समस्या-समाधान

आचार्य ज्ञानेश्वरार्य जी द्वारा
समस्या-समाधान विषयक उपदेशो का संग्रह

संपादक एवं भूमिका लेखक
डॉ. राधावल्लभ चौधरी (एम.बी.बी.एस)

प्रकाशक वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा, (गुजरात) ૩૮૩૩૦૭
दूरभाष : (૦૨૭૭૪) ૨૭૭૨૧૭, (૦૨૭૭૦) ૨૫૭૨૨૪, ૨૮૭૪૧૭
वानप्रस्थ साधक आश्रम : (૦૨૭૭૦) ૦૯૧૫૫૫
Email: darshanyog@gmail.com • website : www.darshanyog.org

पुस्तक : समस्या समाधान

उपदेशक : ज्ञानेश्वरार्य (दर्शनाचार्य, एम.काम.)

संपादक : डॉ. राधावल्लभ चौधरी (एम.बी.बी.एस.)

प्रकाशन तिथि : मई २००९, वैशाख 2067

संस्करण : प्रथम

मूल्य : 25 रुपये

मुख्य वितरक : रणसिंह आर्य
द्वारा डॉ. सद्गुणा आर्या
'सम्यक्' कर्मचारी सोसायटी के पास,
गांधीग्राम, जूनागढ, (गुजरात)

प्राप्तिस्थान

१. **आर्यसमाज मंदिर**, महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, कांकरिया, अहमदाबाद.
२. **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द** ४४०८,नई सड़क, दिल्ली–६.
३. **आर्ष गुरूकुल महाविद्यालय**, खर्राघाट, नर्मदापुरम् होशंगाबाद (म.प्र.)
४. **ऋषि उद्यान**, आना सागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान) पिन ३०५००१.
५. **गुरूकुल आश्रम**, आमसेना, खरियार रोड,जिला नवापारा, (उड़ीसा)
६. **श्री चंद्रेश आर्य**, ३१०, वार्ड ११–बी, साधु वासवाणी सोसा. गोपालपुरी, गांधीधाम (गुज.)
७. **आर्य समाज मंदिर**, पोरबंदर, राजकोट भरूच, मोरबी, टंकारा, जूनागढ़, गांधीनगर, आणंद, जामनगर आदि ।

विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
■ मेरे अपने भाव (भूमिका)	7
1. समस्या के स्वरूप का और समाधान का ज्ञान प्राप्त करें।	9
2. समस्या का समाधान निकालना चाहिए।	10
3. समस्यारहित व्यक्ति ही सुखी होता है।	10
4. समस्याओं से कोई नहीं बच सकता है।	11
5. अपनी सभी समस्याओं का हल कोई नहीं निकाल सकता।	12
6. आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक भेद से समस्याएँ तीन प्रकार की होती हैं।	12
7. आधिदैविक और आधिभौतिक समस्याओं का समाधान संभव नहीं।	13
8. अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश समस्या उत्पन्न करते हैं।	15
9. आध्यात्मिक समस्याएं सबसे ज्यादा होती हैं।	16
10. परिग्रह से समस्या पैदा होती है।	17
11. व्यर्थ की इच्छाओं को उठने न दें।	19
12. तीसरे व्यक्ति के गुण–दोषों के बारे में दूसरे व्यक्ति से चर्चा न करें।	20
13. अन्य व्यक्ति के संबंध में बात करने से लाभ नहीं, हानि होती है।	23
14. 'दम' का आचरण समस्याओं को दूर करता है।	25
15. किसी की सारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती।	26
16. कार्य में सफलता पाना, सदैव हमारे वश में नहीं होता है।	27
17. हम दूसरे को रोबोट की तरह अपनी मनमर्जी से नहीं चला सकते।	28
18. अपने हों या पराये, सभी कभी न कभी हमें जाने–अनजाने में दुःख पहुँचायेंगे।	31
19. व्यक्ति अनुकूलता होने पर अनुकूल और प्रतिकूलता होने पर प्रतिकूल व्यवहार करता है।	32
20. लौकिक नहीं, आध्यात्मिक दृष्टिकोण के चिन्तन में समस्या का समाधान निहित है।	34
21. दार्शनिक ज्ञान को जाने बिना समस्या का समाधान संभव नहीं।	35
22. दूसरा व्यक्ति हमारे प्रति अपनी मर्जी से सोचने, बोलने और करने में स्वतन्त्र है।	35

23. हम किसी को अपनी मनमर्जी के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं। 36
24. सही चिंतन शैली दुःख से बचाती है। 38
25. समस्या से घबराओ मत। 39
26. समस्या आने पर ईश्वर से सहयोग लो। 40
27. कोई भी समस्या सदा नहीं रहती। 44
28. 'हम सही हैं', तो फिर डर कैसा। 45
29. जीवन एक समस्या है। 46
30. अपने से भिन्न पदार्थों को अपना मान लेना समस्या पैदा करता है। 47
31. पास में मौजूद चीजों की सुरक्षा करनी चाहिए। 49
32. ढीठ की तरह बनकर प्रतिकूलताओं को प्रभावहीन करें। 49
33. शास्त्रों के रहस्य को जानने से योगी बनना सरल होता है। 51
34. समस्या से दुःख, दुःख से द्वेष, द्वेष से अनिष्ट कर्म और उससे विनाश होता है। 53
35. धैर्य रखना समस्या का एक हल है। 54
36. धैर्य से समस्या टलती है। 55
37. क्षमा समस्या का एक उपाय है। 56
38. आध्यात्मिक आदमी बहुत बड़ा क्षमाशील होता है। 56
39. क्षमा से समस्या का अंत हो जाता है। 56
40. विवेक सहनशक्ति की व सहनशक्ति क्षमा की जननी है। 57
41. क्षमा करें। 57
42. क्षमा व्यक्ति को प्रगति की राह पर चलाती है। 58
43. व्यक्तिगत हानियों के लिए क्षमा करना चाहिए। 60
44. समाज–राष्ट्र की हानि सहन नहीं करें। 60
45. समाज, राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाले को क्षमा नहीं मिलनी चाहिए। 60
46. प्रत्येक व्यक्ति से भूल होती है। 61
47. तत्काल क्षमा करें। 62
48. विद्या–अध्ययन में की गई भूल क्षमा नहीं की जाती है। 62
49. सामर्थ्यवान ही क्षमा कर सकता है। 63
50. इच्छा का आग्रह समस्यायें पैदा करता है। 64
51. इच्छा का विघात समस्या पैदा करता है। 65
52. कर्म की इच्छा रखो, मगर फल की इच्छा नहीं। 67
53. मन को साधने पर सब सध जाता है। 68
54. काम बढ़ा तो समस्या बढ़ी। 69

55. स्तेय समस्या पैदा करता है। 71
56. स्व–स्वामी सम्बन्ध समस्या पैदा करता है। 73
57. स्व–स्वामी सम्बन्ध अहंकार का जनक है। 73
58. धन–सम्पत्ति के साथ स्व–स्वामी सम्बन्ध बनना झगड़े का कारण है। 74
59. अपनी सरलता, विनम्रता, योगाभ्यास, विद्या, बल, आयु, सेवाभाव, निष्कामता से बना स्व–स्वामी सम्बन्ध ''अभिमान'' को पैदा करता है। 76
60. निरभिमानता का भी अभिमान होता है। 76
61. अभिमान की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। 77
62. स्व–स्वामी सम्बन्ध से अभिमान और अभिमान से समस्याएँ पैदा होती हैं। 77
63. अपने अन्दर मौजूद स्व–स्वामी सम्बन्ध का निरीक्षण करो। 77
64. परिस्थितिवश उत्पन्न उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना चाहिए। 81
65. उग्रवाद क्या है ? 83
66. नास्तिकता व्यक्ति को आतंकवादी बनाती है। 84
67. अन्याय आतंकवाद का जनक है। 85
68. आतंकवाद की जड़ अविद्या है। 85
69. आस्तिकता, न्याय, सम्पन्नता, दण्ड व्यवस्था और शिक्षा के माध्यम से आतंकवाद खत्म किया जा सकता है। 87
70. अल्पज्ञ होने से जीवात्मा को लक्ष्य प्राप्ति हेतु ईश्वर से ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। 90
71. ज्ञान के दृष्टिकोण से चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। 90
72. किसी को सत्य का पता नहीं होता है। 91
73. किसी को उल्टा ज्ञान मिला। 91
74. ''सब कुछ ठीक है'' किसी को ऐसा ज्ञान मिला। 92
75. ''कुछ ऐसे हैं जिन्हें सत्य का ज्ञान मिला'' । 93
76. सत्य जानकर वैसा आचरण नहीं करने वाला सबसे अधिक हानि उठाता है। 93
77. राष्ट्र, समाज, परिवार, और स्वयं की उन्नति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। 95
78. आज की शिक्षा दैनिक जीवन में असफलता दिलाती है। 100
79. आज की पढ़ाई से आदर्श जीवन का निर्माण नहीं हो सकता। 102
80. आज की शिक्षा राष्ट्रीय, सामाजिक संस्थागत दायित्वों की उपेक्षा करती है। 102

81. स्वावलंबी बनकर 'नींव' मजबूत करें। 102
82. व्यक्तिगत कार्यों को ठीक से करना सीखो। 103
83. जीवन में वस्तुओं को व्यवस्थित रखना सीख लो। 104
84. पार्ट टाइम काम करना चाहिए। 104
85. अपनी इच्छा से संस्थागत कार्यों को करें। 105
86. पश्चिमी देशों में बहुत साफ–सफाई और सज्जा है। 109
87. अच्छी गुणवत्ता के फलों और सब्जियों का ज्ञान होना चाहिए। 110
88. निष्काम भाव से समाज सेवा करें। 110
89. निर्माण के काल में परिवार से अलग होकर लक्ष्य प्राप्ति का अभ्यास करना। 111
90. हर समय समता बनी रहे। 117
91. संन्यासी कौन है ? 118
92. राग के कई स्तर होते हैं। 119
93. आचरण में लाये बिना ज्ञान व्यर्थ है। 120
94. संघर्षमय जीवन में ही विशेष उपलब्धियां होती हैं। 123
95. पढ़े हुए को भूलें नहीं। 123
96. विषय को याद भी करो। 124
97. एक शब्द सारे जीवन को बदल सकता है। 124
98. अगली कक्षा में और पिछली कक्षा में पढ़ा तैयार कर जाना चाहिए। 126
99. धन का बड़ा महत्त्व है। 126
100. मित्र का महत्त्व है। 126
101. अच्छे व्यवहार से विश्वास बनता है। 127
102. दुनिया विश्वास से चलती है। 128
103. रिश्ते विश्वास की डोर से बंधे होते हैं। 128
104. गये विश्वास को दोबारा वैसा का वैसा कायम नहीं किया जा सकता। 130
105. विश्वास खोया तो सब कुछ खोया। 132
106. बिना परखे, विश्वास मत करो। 133
107. विश्वास बनाना सौभाग्य का जनक है। 133
108. सरकार को सहयोग करें। 134
109. दुर्घटनाग्रस्त अजनबी की मदद करो। 136

■ ■ ■

मेरे अपने भाव

करीब पन्द्रह वर्ष पूर्व जब मैं अपने कह जाने वाले लोगों की उपेक्षा, तिरस्कार, परिचितों के विश्वासघात और अपनी अज्ञानता, अयोग्यता, विपन्नता और रोगों से पीड़ित होकर दु:ख और निराशा के गहरे समुद्र में गोते लगाता हुआ इनसे पीछा छुड़ाने का असफल प्रयत्न कर रहा था कि प्रभु कृपा से परम कारुणिक आचार्य ज्ञानेश्वरार्य जी का मुझे आश्रय मिला। तब उन्होंने मुझे दर्शन योग महाविद्यालय में डेढ़ माह अपने सान्निध्य में रहने की अनुमति दी। इस दौरान मैं जैसे–जैसे विद्यालय के नियमानुसार सुबह चार बजे जागरण, स्नान, व्यायाम, ध्यान, यज्ञ, स्वाध्याय, सत्संग आदि नियमित दिनचर्या के अंगों का पालन करता चला गया, दु:खद स्मृति, चिंता, अज्ञानता, अयोग्यता और रोग घटते चले गये तथा सहनशीलता, सुख, शांति, एकाग्रता, बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और वैराग्य बढ़ते चले गये, शारीरिक उन्नति भी होती चली गई। इसके बाद तो साल में एक बार एक–दो माह विद्यालय में ही रहने का नियम बना लिया। मैं सोचता था कि कितना अच्छा होता कि जो लोग यहाँ नहीं आ पाते हैं, उन्हें भी यह लाभ मिले। उन्हें भी संसार की वास्तविकता का ज्ञान मिल सके ताकि वे भी अपने को दु:खी होने से बचा सकें और मस्ती से जिन्दगी को जी सकें। ईश्वर कृपा से मेरी यह इच्छा तब पूरी हो गई, जब मैंने आचार्य जी से प्रार्थना की, कि आपके द्वारा दिये गये प्रवचनों को मैंने लिपिबद्ध कर संपादित किया है और मेरी बड़ी इच्छा है कि दूसरों को भी इन प्रवचनों का लाभ मिले। यह सुनकर आचार्य जी ने पुस्तक प्रकाशन की सहर्ष अनुमति दे दी। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। पुस्तक निर्माण में मेरी धर्मपत्नी श्रीमती रेखा चौधरी, मित्र श्री सुरेन्द्र दुबे, एवं श्री दीपक दीक्षित (कम्प्यूटर ऑपरेटर) ने सहयोग प्रदान किया जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटि हो गई हो तो पाठकगण कृपया अवगत करायेंगें ताकि अगले संस्करण में संशोधन किया जा सके।

दि. 26–11–2009

विनयवत

डॉ राधावल्लभ चौधरी

14, सरगम अपार्टमेन्ट, राईट टाउन,जबलपुर (म.प्र.)

मो. 09424306170

E-mail : cdrradhavallabh@yahoo.in

भूमिका–जब मन बुद्धि न चले, व्यक्ति का काम अटक जाऐ, दु:ख व अभाव की स्थिति आ जाए या सुख मिलने में बाधा उत्पन्न हो जाए तो इस स्थिति को समस्या के रूप में देखा जाता है। इसलिये जो हटाने योग्य हो, जिसे बाहर फेंक दिया जा सकता हो, उसे कहते हैं – 'समस्या'। अविवेक बचपन में, क्रोध जवानी में, जराजीर्ण शरीर बुढ़ापे में, समस्या पैदा करता है। कठिन प्रश्न विद्यार्थी के लिए, कलह परिवार के लिए, दुष्ट व्यक्ति सज्जनों के लिए, चोर धनवानों के लिए और तानाशाह प्रजा के लिए समस्या पैदा करता है। सावधान होकर जान लें कि, आचार्यवर क्या कह रहे हैं :–

(1) समस्या के स्वरूप का और समाधान का ज्ञान प्राप्त करें।

समस्या का स्वरूप क्या है, उसके उत्पादक कारण क्या हैं, समस्या कैसे उत्पन्न होती है, किन उपायों से उसका निवारण हो सकता है, इन विषयों पर हम विचार कर रहे हैं। ***समस्या का सामान्य अर्थ व परिभाषा है – प्रतिकूलता, अभाव, बाधा, विरोध, इच्छाओं का फलीभूत (पूर्ण) न होना, अनपेक्षित, अनिच्छित (जो हम नहीं चाहते वैसी) घटनाओं का घट जाना।*** **हमारे साथ विश्वासघात, छल–कपट, मिथ्या–आरोप, हानि, निंदा और चुगली होना आदि परिस्थितियाँ आती हैं, वह समस्या के रूप में उपस्थित होती हैं।**

जो व्यक्ति जीवन पथ पर चलते हुए आने वाली इन समस्याओं का ठीक प्रकार से समाधान करना सीख लेता है, जिसे ऐसे सिद्धांतों का परिज्ञान हो जाता है, जिनसे वह अपने जीवन में आने वाली समस्त समस्याओं का समाधान कर ले अथवा उनको सहन कर ले अथवा उनकी उपेक्षा कर ले अथवा उनको टाल दे तो उस व्यक्ति का जीवन बहुत ही सुखी, शांत, प्रसन्न, निर्भीक एवं स्वतंत्र हो जाता है। दु:खों का कारण समस्याएँ हैं। ***यदि समस्याएँ न हों, तो दु:ख ही न हो।***

समस्याओं के उत्पन्न होने के कारणों को और उसके समाधान के उपायों को भी ठीक प्रकार से जान लेना चाहिए। फिर पूर्ण पुरुषार्थ के साथ व्यक्ति समस्या का समाधान करने के लिये प्रयास करता है तो निश्चित रूप से उस समस्या का समाधान निकल जाता है अथवा वो समस्या को टाल सकता है अथवा उसको सहन कर सकता है। समस्याओं के निवारण के विषय में

अनेक उपाय हैं। समस्याएँ क्यों उत्पन्न होती हैं, इस विषय पर विशेष चिंतन करना चाहिये। समाधान का प्रश्न तब आयेगा, जब समस्याएँ उत्पन्न हों। इसलिए हमें प्रयास यह करना चाहिए कि समस्याएँ उत्पन्न हों ही नहीं।

(2) समस्या का समाधान निकालना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति हर दिन अनेक विषयों से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करता है। ***जो समस्या का समाधान नहीं निकाल पाता है अथवा उनको सहन नहीं कर पाता है अथवा उनको टाल नहीं पाता है, वह निश्चित रूप से क्षुब्ध रहेगा, चंचल रहेगा, दुःखी रहेगा।*** इसलिये समस्याओं और शंकाओं का समाधान निकालने के लिये आवश्यक ज्ञान–विज्ञान और सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति को अवश्य प्राप्त करना चाहिये। अधिकांश समस्याओं से रहित होने पर व्यक्ति शांत, प्रसन्न और संतुष्ट होकर निर्बाध गति से अपने जीवन को आगे की ओर चलाता रहता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को समस्याओं का समाधान निकालना आना चाहिए।

अधिकांश समस्याओं का समाधान होता है। यदि किसी समस्या का समाधान करना नहीं आता है, तो दूसरे पक्ष में व्यक्ति को अपनी शक्ति और सामर्थ्य इतना बढ़ा लेना चाहिए कि वह समस्याओं का समाधान कर सके, अथवा उनको सहन कर सके, अथवा उनको टाल सके।

भूमिका–समस्या का समाधान निकालना चाहिए क्योंकि :–

(3) समस्यारहित व्यक्ति ही सुखी होता है।

प्रसन्न व्यक्ति कौन है, सुखी व्यक्ति कौन है, संतुष्ट व्यक्ति कौन है, निर्भीक व्यक्ति कौन है, स्वतंत्र व्यक्ति कौन है ? ***समस्या, आशंका, भय, चिंता, क्षोभ, संशय आदि इन चीजों से रहित जो व्यक्ति होता है, वह प्रसन्न होता है।*** वह ही संतुष्ट होता है, सुखी होता है, निर्भीक होता है। इसके विपरीत, जिस व्यक्ति के मन और मस्तिष्क के अंदर समस्याएँ बनी रहती हैं, वह शोकग्रस्त रहेगा, दुःखी रहेगा, चिंतित रहेगा, भयभीत रहेगा और आशंकित रहेगा। इसलिये समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिये जो–जो उपाय धार्मिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक ग्रंथों में बताये गये हैं, उनको ठीक प्रकार से जानकर, अपने जीवन में उनका प्रयोग करना चाहिये। सुखी जीवन का यही उपाय है।

(4) समस्याओं से कोई नहीं बच सकता है।

कई प्रकार की समस्याएँ होती हैं, जैसे– स्वयं के द्वारा उत्पन्न की हुई समस्याएँ, अन्यों के द्वारा उत्पन्न की हुई समस्याएँ। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और विश्व स्तर की भिन्न–भिन्न प्रकार की समस्याओं से व्यक्ति ग्रस्त रहता ही है। सामान्य व्यक्ति हो, बुद्धिमान–विवेकी व्यक्ति हो, धनवान व्यक्ति हो, उसके सामने भी समस्याएँ आयेंगी। जीवन पथ पर चलते हुए कदम–कदम पर सबके सामने समस्याएँ उपस्थित होती हैं। ऋषि हो, मुनि हो, योगी हो, धनवान हो, विद्वान हो, बलवान हो, सामर्थ्यवान हो, चाहे सर्वाधिक गुण संपन्न व्यक्ति ही क्यों न हो, दुनिया में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, और न होगा जो कि पूर्णरूपेण समस्याओं से रहित हो जाये। ***स्वयं, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व से सम्बन्धित समस्याएँ मौजूद हैं और सदा रहेंगी।*** प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में समस्याएँ सदा रही हैं और सदा रहेंगी। ऐसा कभी नहीं होगा कि व्यक्ति के सामने समस्याएँ नहीं आयेंगी। ऐसी स्थिति बन ही नहीं सकती है। यह स्थिति जरूर बन सकती है कि व्यक्ति समस्याओं का समाधान निकालने का सामर्थ्य और ज्ञान–विज्ञान प्राप्त कर ले अथवा इतना बल प्राप्त कर ले कि समस्याओं को सहन कर ले, अथवा उनको टाल दे।

विवेकी, बुद्धिमान व धैर्यवान व्यक्ति उन समस्याओं का समाधान निकाल लेता है या फिर वह उनको सहन कर लेता है अथवा उनको टाल देता है और प्रसन्न रहता है। जो इन तीन कार्यों को नहीं कर सकता है, वो व्यक्ति प्रत्येक दिन, प्रत्येक घंटे और प्रत्येक क्षण समस्याओं से ग्रस्त रहता है, उनसे दुःखी रहता है, चिंतित रहता है, भयभीत रहता है और बन्धन में बंधे रहने की अनुभूति करता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को दार्शनिक दृष्टिकोण से समस्याओं का समाधान निकालने का ज्ञान–विज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

भूमिका–पत्नी, पुत्र आदि जीवित (चेतन) और रुपया–पैसा आदि अजीवित (जड़) सुख के साधनों के पीछे दौड़ते हुए, उनको इकट्ठा करते हुए, उनकी रक्षा हेतु संघर्ष करते हुए, उनका उपभोग करते हुए, इन सभी अवस्थाओं में व्यक्ति को मिलने वाला सुख, दुःखों से घिरा हुआ होता है। सुख साधन के मिलने से किसी एक दुःख से मुक्ति भले ही मिल जाये लेकिन ढेर सारे दूसरे प्रकार के दुःखों

का आवागमन चलता रहता है। यही कारण है कि प्रत्येक संसारी व्यक्ति हरेक अवस्था में खुद को समस्या से ग्रस्त मानता ही है, चाहे कहने को वह न कहे या फिर समस्या को समझ न सक। इसलिए आचार्यवर कहते हैं–

(5) अपनी सभी समस्याओं का हल कोई नहीं निकाल सकता।

बुद्धिमान, विवेकी व्यक्ति भी समस्त समस्याओं का समाधान नहीं निकाल सकता। व्यक्ति कितना ही सामर्थ्यवान् क्यों न हो जाये, उसे किन्हीं समस्याओं को सहन करना ही पड़ता है। हर समस्या का समाधान स्वयं के पास मौजूद नहीं होता। कुछ समस्याओं को टालना पड़ता है, उनकी उपेक्षा करनी पड़ती है। ये तीन स्थितियाँ व्यक्ति के सामने आती हैं अर्थात् या तो समस्या का समाधान निकाल ले अथवा उसको टाल दे, या फिर उसको सहन कर ले।

यह सिद्धांत भी समझ में आया कि वही व्यक्ति अपने जीवन में सफल हो पाता है, जो अपनी जीवन राह पर आने वाली समस्याओं का समाधान ठीक प्रकार से, शीघ्रता से, सरलता से और बिना किसी कुप्रभाव (हानि) के निकाल लेता है।

भूमिका–तीन प्रकार की समस्याएँ होती हैं –

(6) आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक भेद से समस्याएँ तीन प्रकार की होती हैं।

कुछ समस्यायें हमारी ओर से उत्पन्न होती हैं। कुछ समस्यायें अन्य व्यक्तियों की ओर से उत्पन्न होती हैं। कुछ समस्यायें जड़–पदार्थों की ओर से उत्पन्न होती हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण से इनको आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, ये तीन नाम दिये गये हैं। समस्याओं को दार्शनिक दृष्टिकोण से तीन विभाग में बाँट सकते हैं :–

(1) आधिदैविक समस्याएँ:–

कुछ समस्याएँ जड़–पदार्थों से उत्पन्न होती हैं। जिनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पाँच स्थूल भूत आते हैं। इनके माध्यम से जो समस्यायें उत्पन्न होती हैं, वे आधिदैविक समस्यायें हैं। जैसे कि आँधी आ गई, तूफान

आ गया, वर्षा हो गई, बाढ़ आ गई, गर्मी हो गई, सर्दी हो गई, आग लग गई, बादल गरजने से भयंकर ध्वनि हो गई। ये समस्याएँ आधिदैविक समस्याएँ कही जाती हैं। इस प्रकार पहली समस्याएँ प्राकृतिक पदार्थों के द्वारा उपस्थित होती हैं। ***स्थूल रूप से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के द्वारा जो प्रतिकूलताएँ उत्पन्न होती हैं, वे आधिदैविक समस्यायें कहलाती हैं।***

(2) आधिभौतिक समस्याएँ :–

कुछ समस्याएँ अन्य प्राणियों की ओर से उत्पन्न होती हैं। हमारे मित्र हैं, साथी हैं, बंधु हैं, पड़ोसी हैं, गली वाले हैं, गांव वाले हैं, नगर वालें हैं, प्रांत वाले हैं, देश वाले हैं, विश्व वाले हैं। ये भी हमारे लिए समस्या उत्पन्न करते हैं। मनुष्य और पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि सभी प्राणी–मात्र इसमें आ गये। जैसे कि मच्छर बढ़ गये, मक्खियाँ हो गईं, साँप–बिच्छू हो गये, कीड़े–मकोड़े बढ़ गये तो समस्याएँ बढ़ जाती हैं। कुत्ते हैं, सूअर हैं, गाय है, बकरी है, घोड़े हैं, चिड़ियाएँ हैं, गिलहरियाँ हैं, छिपकलियाँ हैं, कीट–पतंग हैं, पशु–पक्षी हैं, इनके माध्यम से समस्यायें उत्पन्न होती हैं, और मनुष्यों के माध्यम से भी। ये आधिभौतिक समस्यायें हैं। इस प्रकार दूसरा विभाग है – ***मनुष्य, पशु–पक्षी, कीट–पतंग आदि चेतन जीव (प्राणियों) के द्वारा जो प्रतिकूलताएँ, बाधायें, विरोध, हानियाँ, अभाव, निंदा, चुगली, आरोप–प्रत्यारोप आदि स्थितियों के रूप में जो समस्याएँ उपस्थित की जाती हैं, वे हैं आधिभौतिक समस्याएँ।***

(3) आध्यात्मिक समस्याएँ :–

तीसरी समस्याएँ वो हैं कि जो व्यक्ति की अपनी स्वयं की अज्ञानता से, आलस्य से, प्रमाद से, लापरवाही या शीघ्रता से, दूरदर्शिता से रहित होने से अर्थात् परिणाम (प्रभावों) को न देखकर के काम करने से, उत्तरदायित्वों को, व्रतों को, संकल्पों को, कर्त्तव्यों को छोड़ने से उत्पन्न होती हैं। इन्हें आध्यात्मिक समस्याएँ कहते हैं।

(7) आधिदैविक और आधिभौतिक समस्याओं का पूर्णरूपेण समाधान संभव नहीं।

ध्यान देने की बात ये है कि आधिदैविक और आधिभौतिक समस्याओं का समाधान पूर्णरूपेण कोई व्यक्ति नहीं निकाल पाता है। विशेष परिस्थितियों

में जो आधिदैविक–आधिभौतिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उनका समाधान है ही नहीं। उनको तो सहन करना पड़ता है, उनको तो टालना पड़ता है। उन समस्याओं के लिये व्यक्ति को पहले से तैयारी करनी पड़ती है। बाढ़ से रक्षा के लिये मकान आदि को ऊँचा और मजबूत बनायें। इसी प्रकार अग्नि, जल, गर्मी, धूप, आदि के माध्यम से होने वाले कष्ट से बचने के लिए मकान और वस्त्र आदि को सुव्यवस्थित करें ताकि भूकम्प का, बाढ़ का, गर्मी का, सर्दी का अधिक प्रकोप न हो। इसी प्रकार पशु–पक्षियों, शत्रुओं से और डाकूओं से बहुत कुछ रक्षा की जा सकती है। हम ऐसा करते भी हैं। यद्यपि ऐसा करने पर बहुत सी सीमा में हम समस्याओं का समाधान कर लेते हैं। लेकिन हम फिर भी आधिभौतिक–आधिदैविक समस्याओं का नियंत्रण करने में पूर्णरूपेण सफल हो नहीं पाते हैं।

कोई भी व्यक्ति कभी भी किसी भी काल में हमारे लिये कोई भी समस्या उत्पन्न कर सकता है। हम रास्ते में जा रहे हैं, एकाएक पीछे से कुत्ता आया और उसने हमें काट लिया। किसी ने मधुमक्खियों के छत्ते में पत्थर मार दिया या चील या गिद्ध ने छत्ते को तोड़ दिया। मक्खियाँ भिनभिना गयीं। हमारे लिये एकाएक समस्या उत्पन्न हो गई। इनका पूर्ण रूप से समाधान करना बहुत कठिन होता है। इसी प्रकार एकाएक कभी भी बाढ़ आ सकती है, बिजली गिर सकती है, तूफान आ सकता है। व्यक्ति इनका समाधान तो करते हैं। लेकिन कितना ही समाधान करें पर ये हमारे पूरे वश में नहीं हैं। अमेरिका जैसे देशों में भी तूफान के आने पर सैकड़ों व्यक्ति मारे जाते हैं। इसके अलावा मनुष्यों के द्वारा जो समस्यायें उत्पन्न की जाती हैं, उसका भी कई बार कोई समाधान नहीं मिलता है। अमेरिका जैसे सुसंपन्न, शक्तिशाली देश में करीब 120 माले की बिल्डिंग वर्ल्ड ट्रेड सेंटर से हवाई जहाज टकराये और पूरी बिल्डिंग ध्वस्त हो गयी। इस घटना के घटने से पहले कोई भी व्यक्ति इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ऐसी समस्या पैदा हो जायेगी। आधे घंटे में ये काम हो गया और बिल्डिंग में स्थित हजारों आदमी मर गये। आधिदैविक, आधिभौतिक समस्याओं का पूर्णरूपेण समाधान कोई व्यक्ति निश्चिन्त होकर निकाल नहीं सकता। इसलिए इस प्रकार की समस्याएं तो हमारे जीवनपथ पर आयेंगी ही।

भूमिका–आचार्यवर आध्यात्मिक समस्या की उत्पत्ति का कारण बता रहे हैं :–

(8) ''अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश समस्या उत्पन्न करते हैं।

समस्याओं को हम यदि महर्षि पतंजलि के दृष्टिकोण से लें तो ये अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, इन पाँच कारणों से उपस्थित होती हैं। अविद्या से समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। राग के कारण समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। किसी व्यक्ति में, वस्तु में, स्थान में, किसी क्रिया में या किसी पदार्थ में, व्यक्ति का राग होता है। उस राग की पूर्ति नहीं होती है, तो समस्यायें पैदा होती हैं।

इसी प्रकार बहुत सी चीजें हमारे प्रतिकूल होती हैं। जो हमारे अनुकूल नहीं हैं, जो वस्तुएँ हमको दुःख देने वाली हैं, पीड़ा पहुँचाने वाली हैं, भय और संशय उत्पन्न करने वाली हैं, हमको अशांत और दुःखी करने वाली हैं, उन वस्तुओं के प्रति हमारे मन में द्वेष की भावना उत्पन्न होती है। जब ये वस्तुएँ सामने उपस्थित होती हैं, तो समस्यायें उत्पन्न करती हैं। इन समस्याओं को द्वेषज (द्वेष से उत्पन्न होने वाली) समस्याएँ कहते हैं।

वास्तविकता यह है कि शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि 'जड़' पदार्थ हैं, ये 'आत्मा' नहीं हैं। इन जड़ पदार्थों को अर्थात् मन को, इन्द्रियों को, शरीर को और संस्कारों को व्यक्ति आत्मा के स्वरूप में मान लेता है। यह स्थिति 'अविद्या' नामक आध्यात्मिक समस्या है।

इसी प्रकार एक स्थिति आती है जिसमें व्यक्ति यह विचार करता है कि मैं नष्ट हो जाऊँगा, मैं मर जाऊँगा, मेरा अस्तित्व नहीं रहेगा, मेरा विनाश हो जायेगा। इस प्रकार वह अपने अविनाशी चेतन स्वरूप को विनाशी स्वरूप में मानता है। इससे बचने के लिये व्यक्ति अनर्थ कार्य करता है। यह स्थिति 'अभिनिवेश' नामक आध्यात्मिक समस्याएँ उत्पन्न करती हैं।

समाज के लिये, राष्ट्र के लिये, जनता के लिये, परोपकार के लिये, जनहित के लिये यदि सौ में से, हजार में से, लाख में से एक–दो व्यक्ति भी प्राणों को न्यौछावर करके उस कार्य को संपन्न करने का प्रयास न करें और ये विचार करें कि मुझे क्या मिलेगा, मैं तो मर जाऊँगा, मेरा विनाश हो जायेगा तो ये अभिनिवेश नामक क्लेश के कारण समस्या उत्पन्न हो रही है।

जब अभिनिवेश क्लेश नहीं रहता है तो व्यक्ति की भावना बदलती है कि अगर मैं समाज के, राष्ट्र के अच्छे कार्य करने के लिए, कल्याणकारी कार्यों को करने के लिए जीवन की आहुति दे दूँगा तो समाज, राष्ट्र का कल्याण होगा और मुझे पुण्य मिलेगा। ईश्वर की ओर से मुझे अच्छा जन्म भी मिलेगा।

जब अभिनिवेश क्लेश व्यक्ति को सताता है, तो आध्यात्मिक अज्ञान के रूप में व्यक्ति समाज, राष्ट्र के लिये कुछ भी नहीं करता है। आज समाज, राष्ट्र के लिये जिन व्यक्तियों की बिल्कुल उपेक्षा–वृत्ति है, उनमें अभिनिवेश क्लेश काम करता है। इसमें और भी बातें काम करती हैं, मगर अभिनिवेश क्लेश ज्यादा काम करता है।

भूमिका – दार्शनिक दृष्टिकोण से आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीन प्रकार की समस्याएँ होती हैं । उनमें से :–

(9) आध्यात्मिक समस्याएं सबसे ज्यादा होती हैं।

आधिदैविक और आधिभौतिक समस्याओं की तुलना में आध्यात्मिक समस्याएँ सर्वाधिक होती हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति के साथ होती हैं। ये समस्याएँ तो प्रत्येक दिन होती हैं, प्रत्येक घंटे होती हैं, प्रत्येक मिनट में होती हैं। ***हर समय व्यक्ति अहंकार से, काम (लोभ) से, क्रोध (द्वेष) से, मोह से, हिंसा से, आलस्य से और प्रमाद से ग्रस्त रहता है। इन समस्याओं को आध्यात्मिक समस्या कहते हैं।***

इन सारी समस्याओं का समाधान व्यक्ति ज्ञानपूर्वक निकाल सकता है अर्थात् अपनी तैयारी इतनी अधिक रख सकता है, अपने आपको इतना सशक्त, बलवान और सुदृढ़ बना सकता है कि कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कभी भी उसे दुःखी नहीं कर पाये। कोई निंदा कर, चुगली कर, आरोप लगाकर, छल–कपट कर, विश्वासघात कर, हानि कर, वियोग कर, छीन कर, झपट कर, मार कर भी विवेकी व्यक्ति को दुःखी नहीं कर सकता है। ***आध्यात्मिक समस्याओं का सारा का सारा समाधान मनुष्य के पास में है।*** आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान के प्राप्त होने के उपरांत उसको इन समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है।

भूमिका–अपने स्वार्थ के लिए स्त्री, पुत्र, मित्र आदि जीवित और धन, गाड़ी आदि अजीवित सुख के साधनों को अर्जित करने में, उनकी रक्षा करने में, उनकी वृद्धि करने और उनका भोग करने में बहुत

कष्ट उठाने पड़ते हैं। व्यक्ति का सारा समय, ऊर्जा और धन आदि साधन इन्हीं कामों में खर्च हो जाते हैं जिसमें वह अपने मूल लक्ष्य को भूल ही जाता है। उसके अध्ययन, उपासना, सेवा आदि कार्य छूट जाते हैं। परिग्रही व्यक्ति अपने भूत, भविष्य, और वर्तमान कालिक जीवन के बारे में इस प्रकार से विचार ही नहीं कर पाता कि – मैं कौन हूँ ? यह जीवन क्या है ? क्या यह शरीर मिट्टी, पानी, हवा, अग्नि और आकाश से मिलकर बना है या कुछ और भी है इसमें ? यह शरीर मुझे कैसे मिल गया? क्या इसके पहले भी मेरा जन्म हुआ था ? अगर हाँ तो मैं पूर्वजन्म में कैसा था ? आगे मेरा क्या होगा ? शरीर छोड़कर हम कहा जायेंगे ? भविष्य में क्या मुझे नया जन्म मिलेगा ? मुझे क्या करना चाहिए कि मेरा कल्याण हो ?

इस प्रकार विचार न करना जीवन की सबसे बड़ी असफलता है क्योंकि अपने स्वरूप को जानकर ही अपने हित–अहित को जाना जा सकता है, अपने मन आदि साधनों पर अधिकार किया जा सकता है, मोक्ष के मार्ग पर चला जा सकता है। इसलिए आचार्यवर कहते हैं –

(10) परिग्रह से समस्या पैदा होती है।

समस्यायें ''परिग्रह'' नामक आध्यात्मिक दोष करने से भी उत्पन्न होती हैं। ***अपनी आवश्यकता से अधिक मात्रा में वस्तुओं का संग्रह करना, अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह करना, हानिकारक वस्तुओं का संग्रह करना, ये सभी दुर्गुण ''परिग्रह'' की कोटि में आते हैं।*** एक व्यक्ति के पास में शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान, बल, अनुभव और समय कम है। यदि वह अपनी शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान–विज्ञान आदि के सहयोग से अधिक मात्रा में धन को, संपत्ति को, साधनों को संग्रहित कर लेता है, प्राप्त कर लेता है, तो वह परिग्रह की कोटि में आता है।

परिग्रह के रूप में प्राप्त हुआ ऐसा धन, साधन और संपत्ति आदि वस्तुयें उस व्यक्ति के लिए समस्या पैदा कर देती हैं। प्रायः देखने में आता है कि आवश्यकता से अधिक संग्रह करने पर व्यक्ति उन संग्रहित वस्तुओं की रक्षा करने के लिये, उनकी वृद्धि के लिये, उनके भोग के लिये अपनी इतनी शक्ति, इतना बल और इतना समय लगाता है कि उसको मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिए समय ही नहीं रहता है। इस प्रकार अनावश्यक वस्तुएँ उसको उसके लक्ष्य से हटा देती हैं।

लक्ष्य की प्राप्ति के लिये व्यक्ति साधनों की प्राप्ति करता है। जब लक्ष्य प्राप्त कराने वाले साधन आवश्यकता से अधिक मात्रा में हो जायें और वह उसे सम्भाल नहीं सके तो वही साधन फिर साध्य बन जाता है, और व्यक्ति का जो मुख्य साध्य है, मुख्य ध्येय है, वह छूट जाता है।

बहुत से ऐसे परिवार मिलेंगे जो सुसंपन्न हैं, वैभव और ऐश्वर्य से युक्त हैं। उनके पास में धन–संपत्ति का अपार भंडार हैं। लेकिन वे अपनी धन संपत्ति, ऐश्वर्य, विलास और साधनों से बहुत ज्यादा जकड़े हुए होते हैं। इसलिए वे ईश्वर की उपासना के लिये, स्वाध्याय करने के लिये, सत्संग में जाने के लिये, सेवा के लिये, परोपकार के लिये, आत्मचिंतन के लिये, जितना समय सामान्य व्यक्ति निकाल सकते हैं, उतना समय भी नहीं निकाल पाते हैं। उसमें कारण होता है, उनकी धन–संपत्ति। ऐसी धन–संपत्ति जो ईश्वर से विमुख कर देती है या ईश्वर से सम्पर्क को न्यून कर देती है, स्वाध्याय को न्यून करती है, सत्संग को न्यून करती है, आत्मनिरीक्षण को न्यून करती है, उसका संग्रह ही परिग्रह के अंतर्गत आता है।

व्यक्ति भूल जाता है कि धन–संपत्ति लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये इकट्ठा की जाती है। वह पर्याप्त धन संपत्ति प्राप्त करने के उपरांत भी और अधिक मात्रा में धन सम्पत्ति आदि इकट्ठा करने में लगा रहता है। उसे जिस लक्ष्य को प्राप्त करने में अधिक अग्रसर होना चाहिये, उस ओर अग्रसर न होकर, व्यर्थ और हानिकारक चीजों के संग्रह में लगा रहता है और लक्ष्य की ओर बढ़ने के काम को और कम कर देता है। जिस धन पर, संपत्ति पर और साधनों पर चढ़कर व्यक्ति साध्य को प्राप्त करता है, वह परिग्रहीत धन, संपत्ति और साधन उसके ऊपर हावी हो जाते हैं, उसको दबा देते हैं, और उसको अपने मुख्य लक्ष्य से भटका देते हैं अथवा उसके लक्ष्य की ओर जाने के प्रयास को शिथिल बना देते हैं। ये स्थिति परिग्रह की स्थिति में बनती है।

इसी प्रकार विचारों के परिग्रह के विषय में तो सामान्य व्यक्ति जानता ही नहीं, बल्कि सामान्य और निम्न स्तर के विद्वान व्यक्ति भी परिग्रहीत विचारों (जो परिग्रह की कोटि में आते हैं) के विषय में प्रायः नहीं जानते हैं। लोग दिन में बीसियों, पचासों, सैकड़ों प्रकार के ऐसे विचार मन में उत्पन्न कर लेते हैं, जो परिग्रह की कोटि में आते हैं। अनेक प्रकार के अध्ययन ऐसे कर लेते हैं, जो परिग्रह की कोटि में आते हैं। अनेक प्रकार की चर्चायें ऐसी कर लेते

हैं, जो परिग्रह की कोटि में आती हैं। व्यर्थ और हानिकारक चिंतन, वार्तालाप और व्यवहार ये क्रमशः मानसिक, वाचनिक और शारीरिक परिग्रह की कोटि के अंतर्गत आते हैं। मानसिक चिंतन के विषय में व्यक्ति प्रायः नहीं जानता। वाणी के विषय में ज्यादा नहीं जानता है कि मेरी वाणी परिग्रहीत हुई है या नहीं।

समस्याओं का एक बहुत बड़ा कारण है– विचारों का और वाणियों का परिग्रह कर लेना। अनावश्यक और हानिकारक वस्तुओं, विचारों और वाणियों का संग्रह करना परिग्रह की कोटि में आता है।

दिन में व्यक्ति अनेक बार अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं को देखकर, उनकी गतिविधियों को देखकर, उसके विषय में विचार करने लग जाता है। उन पर अपनी प्रतिक्रिया करने लग जाता है। दूसरों की क्रियाओं को देखकर अपने मन के अंदर अनेक प्रकार की दुर्भावनायें उत्पन्न करने लगता है अथवा राग की स्थिति उत्पन्न कर लेता है या हर्ष की भावना को उत्पन्न कर लेता है। हर्ष और द्वेष, ये दोनों भावनाएं परिग्रह की कोटि में आती हैं। ये भावनाएं समस्यायें उत्पन्न करती हैं।

भूमिका–हमें राज्य नहीं चाहिए, हमें आलीशान महल नहीं चाहिए, हमें गाड़ियों का जखीरा नहीं चाहिए। कारण कि, परिग्रह में सुख, शांति और संतोष नहीं है। हम तो ग्रहण करने योग्य वस्तुओं में से भी उतना ही ग्रहण करते हैं, जितना कि वास्तव में जरूरी है। उतने का ही हमें अधिकार भी है। हम जानते हैं कि जो हमारे उपयोग में नहीं आयेगा, उसे अपना बनाये रखना मूर्खतापूर्ण है। अधिक का संग्रह करेंगे तो संग्रहित की रक्षा में समय व्यर्थ होगा और नाना प्रकार की समस्याएँ सामने आकर सुख–शांति को खत्म करेंगी। आचार्यवर के शब्दों में :–

(11) व्यर्थ की इच्छाओं को उठने न दें।

अच्छे कामों की इच्छा तो होनी चाहिये, मुक्ति की इच्छा होनी चाहिये, समाधि की इच्छा होनी चाहिये, ईश्वर प्राप्ति की इच्छा होनी चाहिये, स्वस्थ, बलवान और दीर्घायु रहने की इच्छा रहनी चाहिये, सेवा–परोपकार की और सत्यावादिता की इच्छा होनी चाहिये। सुव्यवस्थित दिनचर्या, अध्ययन, विद्वान बनना आदि की इच्छा भी होनी चाहिये। लेकिन जो इच्छाएँ व्यर्थ की हैं, जिनका जीवन के लक्ष्य से कोई विशेष संबंध नहीं है, ऐसी व्यर्थ की इच्छाओं को

व्यक्ति उठने न दे। यदि उठती हैं तो उनको दबा दें। उनको नष्ट कर दे। देखने में आता है कि जीवन की उन्नति से, उत्कर्ष से, जिन इच्छाओं का कुछ भी संबंध नहीं है, ***जो व्यर्थ की इच्छाएँ हैं, उन्हें उत्पन्न करके व्यक्ति दु:खी होता है, उन इच्छाओं की पूर्ति हमेशा नहीं होती है।***

व्यक्ति के मन के अंदर व्यर्थ की इच्छाएँ बहुत होती हैं। इसको दार्शनिक परिभाषा में 'परिग्रह' कहा जाता है। अनावश्यक वस्तुओं के विषय में, अनावश्यक कार्यों की योजनाओं के विषय में जो व्यक्ति चिंतन करता है, वह व्यक्ति 'परिग्रही' है। वह अनिष्ट इच्छाओं को उत्पन्न करता है। ऐसा व्यक्ति प्राय: समस्याओं से ग्रस्त रहता है और दु:खी रहता है। इसलिए व्यक्ति को चाहिये कि इच्छाओं का दमन करे।

भूमिका–जिस तरह कुत्ता अपनी जीभ से शुद्ध बर्तन को गन्दा कर देता है, उसी तरह चुगलखोर सज्जन व्यक्ति के मन को गन्दा कर देता है। सामने हंस बोलकर और पीठ पीछे चुगलखोरी कर कलह पैदा करने वाले इन विशेषज्ञों को केवल दोष दिखते हैं, गुण नहीं।

खबरदार, जो व्यक्ति तुम्हारे सामने किसी तीसरे की बुराई कर रहा है, वो निश्चित रूप से किसी और के सामने तुम्हें भी छोड़ेगा नहीं। आचार्यवर निर्देश दे रहे हैं कि:–

(12) तीसरे व्यक्ति के गुण–दोषों के बारे में दूसरे व्यक्ति से चर्चा न करें।

प्रत्येक दिन ऐसी घटनायें देखने को मिल जाती हैं कि दूसरा व्यक्ति आकर के प्रथम व्यक्ति के समक्ष किसी तीसरे व्यक्ति की बात को रखता है। जैसे कि– फलां व्यक्ति ऐसा है, उसने ऐसा किया, उसने ऐसा कहा, वह व्यक्ति इस तरह से विचारता है, उसकी गतिविधि ये है, उसका लक्ष्य ये है, उसकी भावनायें ये हैं, इत्यादि। इस प्रकार से वह तीसरे व्यक्ति के बारे में अच्छी–बुरी बातें कहता है। ऐसी स्थिति जो तीसरे व्यक्ति के दोष के विषय में हैं, वो निश्चित रूप से परिग्रह की कोटि में आती है। यह क्रियाकलाप दोष है, अधर्म है, पाप है। यही समस्याओं को उत्पन्न करता है।

ये चीजें ऐसी हैं जो समाज में, परिवार में और संस्थाओं में सर्वत्र प्रचलित हैं। प्राय: व्यक्ति तीसरे व्यक्ति के विषय में कटाक्ष, प्रतिक्रियाएँ, टिप्पणियाँ आदि करते रहते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि ***व्यक्ति किसी के दोष***

को, त्रुटि को ,भूल को, टिप्पणी को या प्रतिक्रिया को बताता है, स्थिति को बताता है, घटना को बताता है, लेकिन उस समय मन में भय भी करता है। इसलिए वह यह कहता है कि जो कुछ मैंने कहा है, आप उसे बताना नहीं। इस दोष को किसी से कहना नहीं। यह कितनी विचित्र बात है। ये समस्याओं को उत्पन्न करते हैं।

आध्यात्मिक आदमी को, धार्मिक व्यक्ति को, श्रेष्ठ व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने मन में यह संकल्प लेकर के चले कि मैं किसी दूसरे व्यक्ति से, किसी तीसरे व्यक्ति के दोषों को नहीं सुनूँगा और न कहूँगा। इससे समस्याओं की जो बहुत बड़ी शृंखला है, वह खत्म हो जाती है।

कोई दूसरा व्यक्ति हमारे समक्ष आता है तो हम उसको दर्शा दें कि आप हमारे विषय में चर्चा करें, अपने विषय में चर्चा करें। मेरे में जो दोष हैं, वो मुझे आप बतायें। अपने में जो दोष हैं, वह बतायें। समाधान पता होगा तो बताने का प्रयास करेंगे। लेकिन मेरे विषय में कोई तीसरा क्या कहता है ? आपके विषय में कोई तीसरा व्यक्ति क्या कहता है, क्या विचारता है ? तीसरे व्यक्ति की आपके प्रति क्या भावनायें हैं ? क्या धारणायें हैं ? उसके विषय में मुझसे बिल्कुल भी चर्चा न करें। हम परस्पर अपनी बात करें।

तीसरे व्यक्ति के विषय में चर्चा करने की ये जो स्थिति बनती है, ये सारी समस्याओं का ही स्वरूप है। ये व्यर्थ में मस्तिष्क को, सिर को, कूड़ादान बनाने की स्थिति है।

कोई तीसरा व्यक्ति झूठ बोलता है, चोरी करता है, छल कपट करता है, अन्याय करता है, निंदा करता है, पक्षपात करता है, चुगली करता है, कुछ भी अनर्थ करता है। और उसके इन दोषों को दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति को बताता है तो निश्चित रूप से इसको अनर्थ ही मानना चाहिये। ये समस्या ही है।

किसी तीसरे व्यक्ति के विषय में उसके दोषों को नहीं सुनने से मन में शांति बनी रहती है। अनेक बार हम अनुभव करेंगे कि जिनका सामर्थ्य नहीं है, जिनकी सहन शक्ति नहीं है, जिनमें धैर्य नहीं है, जिनमें बुद्धिमत्ता नहीं है, जो गंभीर नहीं हैं, जो अन्तःवृत्ति नहीं हैं और जो इस प्रकार के समाधान निकालने वाले या उन समस्याओं को टालने वाले व्यक्ति नहीं हैं, दूसरे के बारे में कही सामान्य सी बात को सुनकर, वे व्यक्ति विक्षिप्त हो जाते हैं। उनको नींद नहीं आती है। उनको भूख नहीं लगती है। उनको पढ़ना अच्छा नहीं लगता है। उनकी शांति नष्ट हो जाती है। ये बहुत बड़ी समस्यायें हैं।

जो व्यक्ति परिपक्व है अथवा जिसकी अच्छी मानसिक स्थिति है, जो सहनशील है, धार्मिक है, परोपकारी है, दयालु है, क्षमाशील है, समाधानकर्ता है, विद्वान है, अनुभवी है, वो व्यक्ति किसी तीसरे के दोषों को बताता है, या सुनता है तो उसके मन में प्रतिक्रिया पैदा नहीं होती है। वो उसका तत्काल समाधान कर देता है, अथवा उस बात को सुनकर के पचा लेता है। उस बात को किसी के सामने बताता नहीं है। वह अपने मन में इस बात की कोई प्रतिक्रिया नहीं होने देता। इतनी शक्ति, सामर्थ्य उसको प्राप्त हुआ होता है। बिना द्वेष के, बिना प्रतिशोध के, बिना ग्लानि के, बिना किसी घृणा के, बिना हेय स्थिति को लाये वह इस बात को सुनता समझता है। वह उस कहने वाले व्यक्ति को और जिसके विषय में कोई बात बताई गई है, उसको भी वह ठीक प्रकार से बताकर, समझाकर, उसको सही मार्ग पर ला सकता है।

प्रायः होता यह है कि सामान्य व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति के विषय में कोई अरुचिकर या बुरी बात सुनता है तो निश्चित रूप से उसके प्रति मन में घृणा उत्पन्न होती है, द्वेष उत्पन्न होता है, चिंता उत्पन्न होती है और मन के अंदर चंचलता की स्थिति उभर के आती है।

प्रायः ऐसा देखने में आता है कि सामान्य व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति के दोषों को सुनकर बड़ा आनंदित होता है। सुनकर उसको रुचि होती है, हर्ष की अनुभूति होती है। अच्छा, वो ऐसा है, उसने ऐसा किया है, ऐसा करता है, ऐसा कहता है। इत्यादि–इत्यादि बातों को सुनकर वह ये नहीं विचार करता कि इस प्रकार सुनने से मेरे अंदर दोष उत्पन्न हो रहे हैं, मेरे मन में अशांति पैदा हो रही है, मेरे में द्वेष पैदा हो रहा है, उसके प्रति घृणा पैदा हो रही है, उसके प्रति उपेक्षा हो रही है, उसके प्रति प्रतिशोध की भावना मन में उत्पन्न हो रही है। इससे मैं खिन्नचित्त हो जाऊँगा, चंचल हो जाऊँगा और अनेक प्रकार की दुर्भावनायें मेरे मन के अंदर उत्पन्न होंगी।

सामान्य नियम यह होना चाहिए कि आध्यात्मिक, धार्मिक, विवेकी, बुद्धिमान व्यक्ति किसी भी तीसरे व्यक्ति के दोषों को, किसी दूसरे व्यक्ति के माध्यम से न सुनें। हाँ, ये बात और है कि कभी–कोई बहुत बड़ा ऐसा कार्यक्रम होता है, जहाँ दायित्व के विषय में बात आती है या जिसके विषय में हमको कोई भी जानकारी लेनी अनिवार्य होती है, अपेक्षित होती है, उसे कोई दायित्व देना है, उसको कार्यभार सौंपना है या और कोई स्थिति आती

है। तब फिर तीसरे व्यक्ति के व्यवहार के विषय में हम जानकारी प्राप्त कर सकते हैं या कोई उसके विषय में जानकारी देता है तो उसमें वो हानि वाली बात नहीं है। लेकिन सामान्य रूप से एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर किसी तीसरे व्यक्ति के विषय में बातचीत करता है तो यह बातचीत निश्चित रूप से परिग्रह की कोटि में आती है। विचारों का परिग्रह निश्चित रूप से समस्याओं को उत्पन्न करता ही है। फिर भी कोई व्यक्ति चलते–चलते अकस्मात् सुना दे, तो व्यक्ति को चाहिये कि तीसरे व्यक्ति के विषय में सुनी बातें बिल्कुल भुला दे। टाल दे उनको।

व्यक्ति को सुनी, सुनाई बातों के ऊपर भी बिना प्रमाणों के कोई प्रतिक्रिया मन में भी नहीं करनी चाहिये। ये बहुत बड़ा पाप है। कारण कि, ***प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण सत्यवादी नहीं होता है। उसके परीक्षण करने में कमी हो सकती है। वह द्वेष युक्त भी बोल सकता है, वह अज्ञानी होता है अथवा स्वार्थी भी होता है। तीसरे व्यक्ति के विषय में वह कुछ का कुछ विचार कर लेता है, कुछ का कुछ बोल देता है, कुछ का कुछ कर देता है।***

जो व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति के विषय में सुनता है, बोलने वाला बोलता है और यदि वह बात अप्रमाणित है और उसकी प्रतिक्रिया हुई, तो समझ लीजिये पाप उत्पन्न हो गया। बात सुनकर हमारे मन में द्वेष उत्पन्न हो गया तो पाप की प्रवृत्ति उत्पन्न कर ली। घृणा हो गई तो पाप हो गया। प्रतिशोध की भावना आ गई तो पाप कर लिया। उपेक्षा हो गई तो पाप हो गया।

प्रायः व्यक्ति जो बोलता है, वह अप्रमाणित होता है अथवा उसमें कुछ सच्चाई होती है तो भी प्रायः तिल का ताड़ बनाकर के व्यक्ति सुनाते हैं। इसे मोटी भाषा में कहते हैं– नमक–मिर्च लगाकर बोलना।

इसलिये किसी भी दूसरे व्यक्ति के माध्यम से तीसरे व्यक्ति के दोषों को व्यक्ति कभी भी न सुनें तथा सुनाने का निषेध कर दें। फिर भी सुनने में आ जाये तो उस व्यक्ति को, उस कार्य को, बिल्कुल उस चीज को दबा दे, उसको टाल दे, उस बात की उपेक्षा कर दे।

भूमिका–अतः आचार्यवर विषय का उपसंहार कर रहे हैं :–

(13) अन्य व्यक्ति के संबंध में बात करने से लाभ नहीं, हानि होती है।

आत्मनिरीक्षण करने के उपरांत हमको प्रतीति होगी कि ऐसे पचासों, सैकड़ों, हजारों व्यक्तियों के विषय में, क्रियाओं के विषय में, पदार्थों के विषय

में, घटनाओं के विषय में, स्थानों के विषय में हमने सुना। उनमें से बहुत सी बातें मिथ्या होती हैं अथवा सत्य भी होती हैं तो हमारे कार्य में उनको सुनना कोई लाभकारी नहीं है, कोई प्रगति का कारण नहीं है। वे बातें हमारी लक्ष्य–साधक नहीं बनती, बल्कि बाधक ही बनती हैं।

कल्पना कीजिये कि हमने अपने जीवन के अंदर एक हजार व्यक्तियों के दोषों के विषय में सुना। इससे पता चला कि उसने चोरी की, उसने रिश्वत ली, वो छली–कपटी था, वो निंदक था, वो झूठा था, वो दुराचारी था। अब इन बातों को सुनने से हमारे आध्यात्मिक या लौकिक मार्ग में क्या प्रगति हुई ? हमें ये देखना है कि इन बातों को सुनकर मन के अंदर शांति पैदा हुई कि अशांति पैदा हुई। निश्चित रूप से ऐसी घटनाएँ सुनना अपने मन–मस्तिष्क को, बुद्धि को, कूड़ादान बनाने की स्थिति है।

दुनियां में झूठ बोलने वाले हैं और रहेंगे, क्रोध करने वाले हैं और रहेंगे, द्वेष करने वाले हैं और रहेंगे, चुगली करने वाले हैं और रहेंगे, निंदा करने वाले हैं और रहेंगे, हिंसा करने वाले हैं और रहेंगे, दुराचार और बलात्कार करने वाले हैं और रहेंगे। हमने चोरी के विषय में, छल–कपट के विषय में, निंदा के विषय में और किसी के दोषों के विषय में सुन लिया तो इससे हमें क्या लाभ हो गया ? यह सुनकर हम किसी का क्या भला कर सकते हैं और करेंगे ? क्या हमारे पास इतनी शक्ति, बल, सामर्थ्य और समय है कि हम किसी के पास जाकर उसका भला करें ?

पचासों व्यक्तियों के विषयों में, सैकड़ों व्यक्तियों के विषयों में हमने सुना लेकिन प्रतिक्रिया रूप में, अपने सुधार के विषय में एक प्रतिशत भी कोई पुरुषार्थ नहीं किया। बस सुनते मात्र हैं और अपने मन में उसकी प्रतिक्रिया कर मन–मस्तिष्क को बिगाड़ देते हैं और पाप वृत्तियाँ उत्पन्न करते रहते हैं। अपने मन में द्वेष, घृणा उत्पन्न कर लेते हैं।

इस प्रकार जितनी भी अप्रमाणित बातें हैं, जो हमारे उद्देश्यों को दूर करने वाली अथवा असाधन बातें हैं, बाधक बातें हैं, तीसरे व्यक्ति के दोषों से सम्बन्धित बातें हैं, उन बातों को नितान्त नहीं सुनना चाहिये, उनको सुनने के प्रति प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि उन्हें सुनने से व्यक्ति की अपनी स्थिति बिगड़ती हो कदापि ऐसी बातों को सुनना नहीं चाहिये।

जो व्यक्ति ऐसे संकल्पों को, ऐसी प्रतिज्ञा को लेकर चलता है, वह व्यक्ति बहुत सी समस्याओं से मुक्त हो जाता है। सुनने के उपरांत वह (न सुनने के संकल्प वाला) व्यक्ति भी दोष से ग्रस्त हो सकता है। इसलिये इन विचारों के, वाणियों के परिग्रह के विषय में व्यक्ति को बहुत सावधान रहना चाहिये। ये सावधानी हमारी समस्याओं का बहुत बड़ा समाधान निकाल देती है।

भूमिका:–'मनोनियंत्रण' समस्या का एक समाधान है :–

(14) ''दम'' का आचरण समस्याओं को दूर करता है।

समस्याओं के समाधान का धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक उपाय है– जिसका नाम है– 'दमन'। छोटा सा शब्द है दमन। लेकिन यह कितना गहरा है, कितना महत्वपूर्ण है, इसे जान लें। यदि इसकी परिभाषा को ठीक प्रकार से व्यक्ति समझ ले और दमन की स्थिति को प्राप्त कर ले तो उसे कई समस्याएँ छू ही नहीं पातीं, ये निश्चित बात है।

दमन का अर्थ है– मन के अंदर उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की प्रतिकूलताओं से सम्बन्धित जो वितर्क (हिंसा, झूठ, चोरी आदि) हैं, जो क्लिष्ट वृत्तियाँ (अविद्या आदि) हैं, जो प्रतिशोध की भावना है, एवं क्षोभ (अस्मिता) की भावना है, उन सबको सहन करना।

दम का अर्थ है– दमन करना। अर्थ निकल सकते हैं, इन्द्रियों का दमन करना, मन का दमन करना, इच्छाओं का दमन करना, वासनाओं का दमन करना, संस्कारों का दमन करना। इच्छाओं का विघात होने पर व्यक्ति दुःखी होता है। इच्छाओं को जो व्यक्ति मार देता है, कम कर देता है, वह समस्याओं से मुक्त हो जाता है। ऐसा कुछ शेर है – ''चाह गई, चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह, जिसकी कोई चाह नहीं, वह शहनशांहो का शाह''। यही बात सांख्य दर्शन में बताई गई है कि–''निराशा सुखी पिंगलावत्'' ।

प्रायः होता यह है कि जब भी व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करता है या उसके सामने प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती हैं, तब जैसा वह चाहता है, उस प्रकार का कार्य नहीं होता है। इससे उसके मन के अंदर क्षोभ उत्पन्न होता है, निराशा उत्पन्न होती है,और फिर क्रोध उत्पन्न होता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि वह व्यक्ति अपनी उस प्रतिकूलता को सहन न करके अन्दर ही अन्दर दुःख और द्वेष की अग्नि में जलता रहता है, दुःखी होता

रहता है और अपने विवेक, धैर्य और सहनशीलता को खोकर अनिष्ट चिंतन करता है, अनिष्ट (दुष्ट) वाणी का प्रयोग करता है, अनिष्ट कार्यों को कर देता है। इस तरह वह अपना विनाश करता है, अपने परिवार वालों का विनाश करता है, अपने पड़ोसी–मित्रों–संबंधियों का विनाश करता है, समाज का विनाश करता है और राष्ट्र का भी विनाश करता है। यहाँ तक कि विश्व का भी विनाश करता है।

इन समस्याओं के समाधान के लिये एक बड़ा उपाय है – अपने मन के ऊपर नियंत्रण करना, मन में उत्पन्न होने वाले वितर्कों को दबाना। जैसे चुंबक लोहे को खींचता है, ठीक वैसे ही प्रतिकूल परिस्थितियाँ व्यक्ति के मन को आंदोलित कर देती हैं। वे उसको रजोगुण से युक्त बना देती हैं, उसे उत्तेजित कर देती हैं, कुपित कर देती हैं। उस समय दौर्मनस्य (क्षोभ) की स्थिति मन के अन्दर बन जाती है। व्यक्ति धैर्य और सहनशीलता को खोकर के अनिष्ट चिंतन करता रहता है, अधर्म के कार्य करता रहता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों के समक्ष उपस्थित होने पर अपने मन पर नियंत्रण कर ले तो समस्या उत्पन्न होती ही नहीं।

भूमिका–एक चाह पूरा होते ही पहली से बड़ी दूसरी चाह उत्पन्न कर देती है। इस कारण पिपासा कभी बुझ नहीं पाती, जिससे व्यक्ति पूरे तौर पर संतुष्ट नहीं हो पाता है। वह तो कामनाओं के जाल में बँधकर घिसटता रहता है। इसलिए आचार्यवर कहते हैं –

(15) किसी की सारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती।

इस दुनियाँ के अंदर किसी भी व्यक्ति की प्रत्येक इच्छा पूरी नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक दिन इच्छाएँ उत्पन्न करता है, योजनायें बनाता है, मन के अंदर संकल्प करता है, अच्छे–अच्छे स्वप्न देखता है, लेकिन आज तक ***इस संसार में किसी की भी सारी इच्छाएँ पूरी नहीं हुई, वह चाहे योगी हो, चाहे ऋषि हो, महर्षि हो या फिर चक्रवर्ती सम्राट।"***

यदि दार्शनिक दृष्टिकोण से हटकर हम कहें तो ***परमपिता परमात्मा की भी सारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती।*** ये समझने की बात है। हाँ, ईश्वर की इच्छाएँ भी पूरी नहीं होती है। उदाहरण से यह समझ में आयेगा। ईश्वर चाहता है कि हम सभी जीवात्माएँ समस्त अज्ञान से रहित होकर के उसके पास में आ जाएँ, मुक्ति को प्राप्त कर लें। इसलिये ईश्वर संसार बनाता है, इसलिए

उसने वेद का ज्ञान दिया है, इसलिये सबको समान बुद्धि भी दी है। ईश्वर की यही कामना है कि सभी जीवात्माएँ इस संसार के विषय के भोगों में न फंसकर, पाप कर्मों को न कर, अपने अंतःकरण को पवित्र बनाकर मोक्ष को प्राप्त कर लें और आनंद को प्राप्त करें। लेकिन इस संसार के अंदर अनादि काल से सारी की सारी जीवात्माएँ कभी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं हुई। यदि एक साथ ही सारी जीवात्मायें मुक्ति को प्राप्त हो जायें तो संसार बनाने की अपेक्षा ही नहीं रह जायेगी। लेकिन न कभी ऐसा हुआ, न कभी होगा।

इसी प्रकार ऋषियों की इच्छाएँ अपूर्ण रह जाती हैं। ईश्वर की अपनी स्वयं के लिए कोई इच्छा नहीं होती है। इच्छा तो तब होगी, जब स्वयं में कोई कमी हो। तब वह उसकी पूर्ति करना चाहता हो। समाज, राष्ट्र, विश्व के कल्याण की इच्छाएँ ऋषियों के मन में अवश्य होती हैं। लेकिन वे कभी पूरी नहीं होती।

भूमिका–हमारे पास ज्ञान, बल, धन आदि साधन सीमित हैं इसलिए:–

(16) कार्य में सफलता पाना, सदैव हमारे वश में नहीं होता है।

हम प्रयास करेंगे, पुरुषार्थ करेंगे, तपस्या करेंगे, लेकिन किसी कार्य की सफलता हमारे हाथ में नहीं है। हम विभिन्न सामाजिक कार्यों को करते हैं। ईश्वर हमेशा अच्छे कार्यों को करने की प्रेरणा देता है, उत्साह देता है, पराक्रम की भावना मन के अन्दर उत्पन्न करता है। वह आशा बँधाता है। ऋषि लोग अपने ज्ञान विज्ञान के माध्यम से हमें प्रेरणा देते हैं। ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़कर हम ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त करते हैं, कार्यों को करते हैं। इस तरह वे भी हमारे सहायक बनते हैं। महापुरुष भी हमारे सहायक बनते हैं। सत्यवादी, आदि अच्छे लोग हमारे सहायक बनते हैं। लेकिन फिर भी जिस कार्य का सम्बन्ध ऐसे व्यक्तियों के साथ में होता है, जो ठीक नहीं होते हैं। तो वे विश्वासघात कर देते हैं, छल–कपट कर देते हैं, अन्याय कर देते हैं, पक्षपात कर देते हैं। ***कार्यसिद्धि जब दुष्ट व्यक्तियों के आधीन होती है, तो उसके कारण कार्य सफल नहीं होता है।***

घर में भी ऐसा ही घटित होता है। एक व्यक्ति चाहता है कि मेरे परिवार में सभी सदस्य स्वस्थ हों, सभी प्रसन्न हों, सभी शांति से रहें, सभी मिल–जुलकर रहें, आपस में बिल्कुल भी झगड़ा, वाद–विवाद न हो लेकिन

यह उसके वश में नहीं है। कभी किसी को आपत्ति (Objection) है तो कभी किसी और को आपत्ति आ सकती है। संस्थाओं में ऐसा ही घटित होता है, समाज में भी ऐसा होता है। लोकसभा में देख सकते हैं, राजसभा में देख सकते हैं। वहां कितनी धमाल होती है। इससे सिद्ध होता है कि किसी व्यक्ति की सभी इच्छाएँ पूरी नहीं होती हैं।

व्यक्ति को अपने मन–मस्तिष्क के अंदर यह सिद्धांत अच्छे से गांठ बाँध लेना चाहिये कि ये आवश्यक नहीं कि मेरी सारी की सारी इच्छायें समय पर यथानुकूल पूरी हो जायें। यह संभव नहीं कि सभी व्यक्ति मेरा सम्मान करें, मेरी पूजा करें, मेरी स्तुति करें, मेरे गुण गायें, मेरी जय–जयकार करें, मुझको अच्छा मानें। जहाँ पचास आदमी प्रशंसा करेंगे, तो पाँच–सात आदमी विरोध भी करेंगे, उपेक्षा भी करेंगे।

लोग तो भगवान को भी नहीं छोड़ते हैं। इस देश के अंदर और विश्व के अंदर लाखों, करोड़ों व्यक्ति आपको मिलेंगे जो उठते ही परमपिता परमात्मा के लिए गाली निकालते हैं। ईश्वर के विरुद्ध अपशब्द निकालते हैं। इतिहास साक्षी है, लोगों ने ऋषियों तक को छोड़ा नहीं, महापुरुषों तक को छोड़ा नहीं, जहर देकर के, जला करके, काटकर के, पता नहीं कैसे–कैसे उनको जान से मार दिया।

भूमिका:–कोई इन्सान अपनी बेड़ी को आभूषण समझकर नहीं मुस्कुरायेगा, कोई इन्सान हड्डी के लिए अपने को कुत्ता नहीं बनायेगा। कारण कि, दासता में सुख मिलता नहीं। इस विषय में आचार्य–वचन है–

(17) हम दूसरे को रोबोट की तरह अपनी मनमर्जी से नहीं चला सकते।

प्रत्येक व्यक्ति हमारे विषय में सोचने में, बोलने में, और करने में स्वतंत्र है। यह वाक्य एक महामंत्र है जो हमने अपने गुरु से सीखा है। जैसा व्यक्ति का ज्ञान–विज्ञान है, जैसा उसका परीक्षण है, जैसी उसकी मानसिक स्थिति है, जैसा उसका सिद्धांत है, जैसी उसकी मान्यता है, उसके अनुसार ही वह हमारे विषय में विचार करेगा। हम दूसरे व्यक्ति को रिमोट कंट्रोल की तरह अपने अनुकूल नहीं चला सकते। हम ऐसा आग्रह नहीं कर सकते कि वह मेरे विषय में ऐसा कहे, ऐसा बोले, ऐसा विचारे, ऐसा माने। यह कभी नहीं हो सकता।

परिवार में सदा कोई अनुकूल नहीं रहेगा।

दूसरे राष्ट्रों की, विरोधियों की, जाति वालों की, सम्बन्धियों की, पड़ोसियों की, मित्रों की बात छोड़ दीजिये। घर के अंदर पति–पत्नी हों, बाप–बेटे हों, भाई–भाई हों, उनके आचरण को देखिए। शायद ही कोई ऐसा परिवार का सदस्य मिलेगा जो कितना ही घनिष्ठ क्यों न हो, परन्तु दूसरे के विषय में कभी भी प्रतिकूल न विचारता हो, कभी परस्पर विरोध उत्पन्न न करता हो, दूसरे के प्रति संशय न करता हो, अनिष्ट चिंतन न करता हो। मिलना बहुत कठिन है। चाहे वह पति–पत्नी, बाप–बेटा, भाई–बहिन दस वर्ष से, बीस वर्ष से, पचास वर्ष से साथ में रह रहे हों लेकिन फिर भी उनके बीच में कहीं न कहीं, किसी न किसी विषय के अंदर विरोध उत्पन्न होता ही है। एक दूसरे के प्रति गलत विचार करते हैं। वाणी से स्वीकार करना एक अलग बात है, जबकि मन से स्वीकार करना और बात है।

हम घरों में देखेंगे, परिवारों में देखेंगे, संस्थाओं में देखेंगे। गुरु हैं, आचार्य हैं, माता–पिता हैं, पति–पत्नी हैं, शत–प्रतिशत विचार किसी के नहीं मिलते हैं। ऐसे धार्मिक वर्तमान में बहुत कम मिलेंगे, हजारों में नहीं, लाखों में कोई एक दो पति–पत्नी, बाप–बेटा, भाई–बहन मिल जायें तो मैं इसे बड़ा गर्व का विषय समझूँगा। कितने ही अच्छे पति–पत्नी हो, बाप–बेटे हो किसी ना किसी विषय के अंदर, मन के अंदर विरोध बना होगा। ये अलग बात है कि – संशय के कारण, लज्जा के कारण या पारिवारिक स्थितियों को बनाने के कारण, या किसी अन्य कारण से व्यक्ति उसको सहन कर लेता है, बोलता नहीं है, समर्पण करता है, उसके साथ चलता रहता है, लेकिन मन से भी समर्थन हो ऐसा आवश्यक नहीं है ।

एक सिद्धांत है, इसकी मन में कल्पना करनी चाहिये। जैसे मैं विद्यालय में पढ़ाता हूँ, विद्यार्थियों की व्यवस्था करता हूँ। मैं विद्यार्थियों के कल्याण के लिए, हित के लिए काम करता हूँ। इतना करते हुए भी मैं मन में यह विचार नहीं करता कि प्रत्येक विद्यार्थी, मेरी प्रत्येक क्रिया को, प्रत्येक वाणी को, प्रत्येक विचार को ठीक प्रकार से समझेगा और उसका समर्थन करेगा। लेकिन कुछ बातें इन्हीं विषयों में कभी न कभी किन्हीं अंशों में समझ में नहीं आती और मन में पड़ी रहती हैं। इसी प्रकार हम ऐसा विचार कभी नहीं करते हैं कि हमारी बात पूरी की पूरी आपके समझ में आती हो। इसलिए ***हमारे विचारों को, चेष्टाओं को, क्रियाओं, योजनाओं को, कार्य करने की शैली को,***

सिद्धांतों को, मन्तव्यों को, लोग ठीक प्रकार से पूरा का पूरा समझ लेते हों, और पूरा समर्थन करते हों, ऐसा सोचने की मूर्खता हमें नहीं करनी चाहिये। पता नहीं कितने प्रकार के हिंसा, झूठ आदि वितर्क विद्यार्थियों के मन में मेरे प्रति उत्पन्न होते होंगे, कितने प्रकार के विरोध उत्पन्न होते होंगे। विद्यार्थी वाणी से प्रदर्शन न करें, शरीर से प्रदर्शन न करें, लेकिन मन में तो रखते ही होंगे। क्योंकि एक दूसरे को ठीक प्रकार से कोई समझ नहीं सकता। उसकी भावनायें क्या हैं, यह जानना कठिन है।

एक ही कार्य अच्छा आदमी भी करता है और बुरा आदमी भी करता है। सहयोग अच्छा आदमी भी करता है और बुरा आदमी भी करता है। दान अच्छा आदमी भी देता है और बुरा आदमी भी देता है। इस प्रकार से यहां पकड़ने वाली बात ये है कि स्वार्थी आदमी भी सेवा करते हैं, दान देते हैं, परोपकार की भावना प्रदर्शित करते हैं, सहयोग करते हैं, लेकिन उनकी भावना अलग होती है। इसे समझना बड़ा कठिन होता है। इस मामले में प्रायः सभी धोखा खाते हैं। ***जहाँ विश्वास होता है, वहाँ विश्वासघात भी होता है।***

हम इस एक सिद्धांत को मानकर चलें कि दूसरा व्यक्ति चाहे कितना ही हमारा घनिष्ठ क्यों न हो, तो भी यह संभव नहीं है कि जैसे हम हैं, वैसा ही वह हमारे विषय में विचारे। हम धार्मिक हैं, इसलिए हमें वह धार्मिक ही कहेगा, यह आवश्यक नहीं है। वह हमको अधार्मिक कह सकता है। हम निःस्वार्थ भावना से कार्य करते हैं और वह व्यक्ति हमको निःस्वार्थ मानेगा नहीं। हमको वह स्वार्थी मान सकता है। हम सत्यवादी हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि वह हमें सत्यवादी माने। वह हमको झूठा भी मान सकता है। हम विनम्र हैं, सरल हैं, लेकिन वह हमें इस प्रकार का मानें, ये आवश्यक नहीं। इस प्रकार सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत हम अपने मस्तिष्क में यह बना के चलें कि ***प्रत्येक व्यक्ति हमारे विषय में जैसे हम हैं, आवश्यक नहीं कि हमारे बारे में वैसा ही विचारे भी, बोले भी और करे भी। हम उसके प्रति दया की भावना रख रहे हैं, उसके प्रति दया कर रहे हैं, उसका हित चाह रहे हैं, मगर वह कह सकता है कि नहीं, ये तो मेरा अहित कर रहा है। ये अनर्थ कर रहा है।***

भूमिका—दूसरों के साथ निःस्वार्थ व्यवहार करने वाला ना तो कोई पैदा हुआ था, ना है और ना आगे होगा। कारण कि, संसार में निःस्वार्थी जीवात्मा का अस्तित्व ही नहीं है। स्वार्थ सिद्धि होने तक ही प्रेम और

मित्रता की जाती है। स्वार्थ सिद्धि के लिए मित्र को हानि भी पहुँचायी जाती है। सब जगह स्वार्थ की जंजीरों में जकड़ा हुआ मनुष्य, अपनी जरूरत पूरी करने के लिए दूसरे की स्वतन्त्रता का हनन भी करता है। इस घटना के संबंध में आचार्यवर पहले से ही तैयार कर रहे हैं कि याद रखो:–

(18) अपने हों या पराये, सभी कभी न कभी हमें जाने–अनजाने में दु:ख पहुँचायेंगे।

आप देखेंगे कि किसी व्यक्ति के लिए हम तन, मन और धन से समर्पण की भावना से युक्त होकर निष्काम भाव से कार्य करते हैं और प्रेमयुक्त कार्य करते हैं जिससे की उसकी उन्नति हो, प्रगति हो, उसका विकास हो, वह दु:खों से बचे। इस सब के बावजूद वही व्यक्ति हमारे कार्यों को लेकर के विचार करता है कि यह व्यक्ति स्वार्थी है। मेरे काम को करने के पीछे इसका अपना एक लक्ष्य है, यह ठग है। तात्पर्य है कि यह आवश्यक नहीं कि हम अपने मन में जिस प्रकार के विचारों को लेकर के चलते हैं, दूसरा व्यक्ति भी हमारे बारे में वैसा ही विचार करे। यह सिद्धांत बनाकर चलना चाहिये।

प्रत्येक प्रतिकूल परिस्थिति के उत्पन्न होने पर, मन में यह विचार करना चाहिये कि ये कोई नई बात नहीं है, जो मेरे साथ घट गई। प्रतिकूलताएं आयी हैं, प्रतिकूलताएं आयेंगी, असफलताएँ हुई हैं, और असफलताएँ रहेंगी। कौन असफल नहीं हुआ ? एक ईश्वर ही है, जो अपने कार्यों में असफल नहीं होता है। बाकि सभी व्यक्ति असफल होते हैं। सभी व्यक्तियों के सामने बाधायें आती हैं, सभी का विरोध होता है, निंदा होती है, सभी के साथ छल कपट होता है, विश्वासघात होता है, अन्याय होता है, पक्षपात किया जाता है, हानि होती है। दुनियां में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो इनसे बचा हुआ है। दुनियां स्वार्थी है, थी और रहेगी।

ध्यान देने की बात है कि पराया व्यक्ति हमारे साथ छल–कपट कर ले, अन्याय कर ले, विश्वासघात कर ले, आरोप लगा ले तो उतना दु:ख नहीं होता है। प्राय: व्यक्ति अपरिचित व्यक्ति के व्यवहार से ज्यादा दु:खी नहीं होता है। जो मित्र हैं, पड़ोसी हैं, घनिष्ठ सम्बन्धी हैं, परिचित हैं, जब वे व्यक्ति विश्वासघात करते हैं, हमको गलत मानते हैं, झूठा मानते हैं, स्वार्थी मानते

हैं, अनेक प्रकार से दोषयुक्त मानते हैं, तब ज्यादा कष्ट होता है। ***बस हमें समझना ये ही है कि अपने ही आदमी जिनका हम उपकार कर रहे हैं, जिनके हम साथ रह रहे हैं, जिनको हमने पैदा किया है, जिनके लिए हम तन–मन–धन लगा रहे हैं, वे ही व्यक्ति आगे चलकर हमारे विरोधी बनेंगे, वे ही हमारी निंदा करेंगे, विश्वासघात करेंगे, छल–कपट करेंगे, अन्याय करेंगे।***

ये सिद्धांत मन में बना लें, अपरिचित व्यक्ति के लिये नहीं, अपने ही माने जाने वाले व्यक्ति के लिये इस प्रकार की विचारधारा मन में बनाकर के चलें। चाहे पुत्र ही क्यों न हों, जिसको खिलाया–पिलाया, पैदा किया, जिसके लिए तन–मन–धन लगाया, जिसके लिए रात–रात जागा, जिसके लिए खून–पसीना बहाया, जिसके लिए कष्ट उठाया, वही व्यक्ति जब समर्थ हो जाता है, तो अपने अज्ञान के कारण, अपने स्वार्थ के कारण या अन्य किसी कारण से, अपरम्परा के कारण विवेक से काम नहीं लेता है। वह अपने माता–पिता को, मित्रों को, साथियों को जो कि हितैषी होते हैं, उनको खराब मानता है, दुष्ट मानता है, उनकी उपेक्षा करता है, उनका विरोध करता है तथा उनसे घृणा भी करता है।

हमारे मस्तिष्क के अंदर यह सिद्धांत बनना चाहिये कि कितना ही निकटस्थ व्यक्ति क्यों न हो वो व्यक्ति अज्ञान के कारण, स्वार्थ के कारण अथवा अन्य किन्हीं कारणों से हमारा विरोध कर सकता है । वह हमारे लिये समस्याएँ पैदा कर सकता है, वह हमारे साथ विश्वासघात कर सकता है, अन्याय कर सकता है व हानि कर भी सकता है। ये मानकर चलना चाहिये। जो व्यक्ति ये मानकर चलता है, उसको दुःख नहीं होता है। समस्या नहीं रहती है। समस्या तब बनती है, और बनी ही रहती है जब ये विचार करते हैं कि ये तो कभी ऐसा करेगा ही नहीं, ये मेरे साथ छलकपट करेगा ही नहीं, ये तो अन्याय करेगा ही नहीं।

भूमिका–स्वार्थ की अनुकूलता होने पर मित्र तथा प्रतिकूलता होने पर शत्रु बना करते हैं –

(19) व्यक्ति अनुकूलता होने पर अनुकूल और प्रतिकूलता होने पर प्रतिकूल व्यवहार करता है।

यह सिद्धांत हमने सीखा है, इस ज्ञान का ऐसा प्रयोग करते हैं। जैसे आज कोई ब्रह्मचारी इस विद्यालय (गुरुकुल) से भाग जाये तो हमारे मन में

एक क्षण के लिए भी दुःख नहीं होगा क्योंकि हम ये मानकर चलते हैं कि वे अपनी अनुकूलता से यहाँ रह रहे हैं। अपनी इच्छा से यहाँ पर पढ़ रहे हैं। जिस दिन प्रतिकूलता महसूस हुई, उस दिन वे यहाँ से चले जायेंगे। उनके जाने का कोई कष्ट नहीं होगा। मैं भी अपनी अनुकूलता से यहाँ आश्रम में रह रहा हूँ। जब तक मेरी अनुकूलता है, मैं यहाँ पर रहूँगा। जब यहाँ प्रतिकूलता हो जायेगी, जिस दिन मुझे यहाँ हानियां दिखेंगी, बड़ा कष्ट दिखाई देगा, मैं एक दिन भी यहाँ नहीं रहूँगा।

विद्यार्थी तब तक ही विद्यालय (गुरुकुल) में रहेंगे, जब तक उनको ये प्रतीति होगी कि यहाँ हानि कम है और लाभ अधिक है, अनुकूलता अधिक है, प्रतिकूलता कम है, असुविधायें कम है, सुविधायें अधिक हैं, अवनति कम है, उन्नति अधिक है। जिस दिन विद्यार्थी के मन में आ गया कि यहाँ पर हानि हो रही है, अवनति हो रही है, दुःख है, बंधन है, पीड़ा है, अन्याय है, पक्षपात है, तो उसी दिन वे विद्यार्थी विद्यालय से भाग जायेंगे।

व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों के विषय में, अपने मित्रों के विषय में, अपने परिजनों के विषय में, प्रत्येक व्यक्ति के विषय में इस प्रकार का दृष्टिकोण अपने मस्तिष्क में बना कर चलना चाहिये कि कोई भी व्यक्ति कभी–भी अज्ञान के कारण, स्वार्थ के कारण, दूसरों के द्वारा भ्रमित किये जाने के कारण अथवा अन्य कारणों से हमारा विरोध कर सकता है, हमारी हानि कर सकता है, हमारे विषय में गलत विचार कर सकता है, हमारे विषय में संशय कर सकता है, हमारे प्रति आरोप लगा सकता है।

जो ऐसा विचारेगा उसके लिए समस्याएँ आएँगी तो, लेकिन वह सहन कर लेगा। जिसके पास यह समाधान नहीं है, वो तो चिंता करता रहेगा। चिंता करते–करते उसे रोटी अच्छी नहीं लगेगी, भूख नहीं लगेगी, नींद नहीं आयेगी, यज्ञ, उपासना की बात तो दूर रही, वह तो अपने सामान्य कार्यों को भी नहीं कर पायेगा। वह व्यक्ति भयंकर चिंतित होकर दुःखी होकर ब्रेन हैमरेज या हार्ट अटैक ले आयेगा और मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। वह व्यक्ति अगर दुष्ट होगा, बलवान होगा तो अपना ब्रेन हैमरेज नहीं करेगा लेकिन दूसरों का ब्रेन हैमरेज कर देगा, उन्हें मार देगा, उनका अनिष्ट कर देगा। दो प्रकार की स्थितियाँ बनेंगी। या तो व्यक्ति स्वयं मरेगा, दुःखी होगा, पागल होगा, अपना अनिष्ट करेगा और रोगी हो जायेगा अथवा जो स्वयं सशक्त है, अपनी हानि

तो नहीं करेगा मगर वो समाज की, परिवार की, दूसरे व्यक्ति की हानि करेगा। इसलिये समस्या का एक बहुत बड़ा समाधान है– मन के ऊपर संयम करना।

भूमिका–आचार्यवर दु:ख का भार कम करने के लिए, दु:ख से पार पाने के लिए, दु:ख निवारण की एक अमोघ औषधि का निर्देश कर रहे हैं:–

(20) लौकिक नहीं, आध्यात्मिक दृष्टिकोण के चिन्तन में समस्या का समाधान निहित है।

समस्याएं सब व्यक्ति के सामने उभरकर के आती हैं और अनेक व्यक्तियों के पास में उनका समाधान मौजूद नहीं होता है। जिस प्रकार से सामान्य लौकिक व्यक्ति विचार करते हैं, लौकिक दृष्टिकोण से चिन्तन करते हैं, उस प्रकार से चिन्तन करने वाला, विचार करने वाला व्यक्ति समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है। वह समस्याओं से ग्रस्त रहेगा ही। इसके विपरीत किसी विषय पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार और चिन्तन करने वाला व्यक्ति समस्याओं का समाधान तत्काल निकाल लेता है।

ध्यान देने की बात है कि किसी भी विषय के ऊपर लौकिक दृष्टिकोण से चिन्तन करना एक अलग बात है और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चिन्तन करना एक अलग बात है। हमारे चिन्तन की शैली लौकिक होगी तो समस्याएं हमको ग्रस्त करेंगी। हम उनसे दु:खी रहेंगे, उनका समाधान निकाल नहीं पाएंगे, उनको सहन नहीं कर पाएंगे, उनको टाल नहीं पाएंगे। यदि हमारा चिन्तन करने का ढंग आध्यात्मिक है, धार्मिक है, दार्शनिक है तो हम प्रत्येक समस्या का समाधान कर लेंगे अथवा सहन कर लेंगे या टाल देंगे। ये तीन स्थितियां आ जाएंगी।

प्राय: उसी व्यक्ति के पास समस्याएं रहती हैं, वही उनसे घिरा रहता है और दु:खी रहता है जिस व्यक्ति को समस्याओं के संबंध में चिन्तन करना नहीं आता है। एक उदाहरण दे रहा हूँ। एक व्यक्ति विचार करता है कि मेरे ऊपर अन्याय क्यों हुआ, अन्याय नहीं होना चाहिए। अन्याय करना अधर्म है, पाप है। मेरे साथ में अन्याय करने वाले व्यक्ति को दंड मिलना चाहिए, उसको उसकी गलती बताई जानी चाहिए, प्रताड़ित किया जाना चाहिए। यदि अन्याय को हम सहन करेंगे और उसकी प्रताड़ना नहीं करेंगे तो अन्याय बढ़ेगा। अन्याय करने वाले व्यक्ति के साहस को तोड़ना चाहिए, उसे रोकना चाहिये।

व्यक्ति का इस तरह से सोचना लौकिक दृष्टिकोण से सही हो सकता है। ये बात लौकिक क्षेत्र के अन्दर घटती है परंतु आध्यात्मिक क्षेत्र के अंदर नहीं। आध्यात्मिक क्षेत्र में अन्याय करने वाले व्यक्ति को सहन किया जाता है, उसको टाला जाता है। उसके प्रति भी मन के अंदर उसके सुख और कल्याण की कामना, उसके मंगल की कामना की जाती है। ऐसा करने से व्यक्ति की अपनी मन की स्थिति ठीक हो जाती है। आध्यात्मिक क्षेत्र में यही एक उपाय है।

भूमिका–जगत को समझने और समस्याओं की सच्ची दवा के रूप में "दर्शन" रूपी साधन का प्रयोग किया जाना चाहिए। आचार्यवर कहते हैं :–

(21) दार्शनिक ज्ञान को जाने बिना समस्या का समाधान सम्भव नहीं।

ये निश्चित बात है कि ऋषिकृत दार्शनिक ग्रंथों को जब तक व्यक्ति नहीं पढ़ता है, तब तक समस्याओं का समाधान ठीक प्रकार से नहीं कर सकता है। व्यक्ति कितना ही त्यागी हो, कितना ही तपस्वी हो, कितना ही परोपकारी हो, कितना ही पुरुषार्थी हो, कितना ही धार्मिक हो, कितना ही सहनशील हो, कितना ही विनम्र हो, लेकिन जब तक व्यक्ति दार्शनिक दृष्टिकोण से समस्याओं के समाधान की शैली को, सिद्धांतों को नहीं समझेगा, तब तक वो दुःखी रहेगा। शाब्दिक ज्ञान से युक्त व्यक्ति भी दुःखी रहता है। जब तक दार्शनिक और आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान व्यक्ति को व्यावहारिक रूप से हस्तगत नहीं होता है तब तक वह दुःखी रहता है।

भूमिका–मन–मस्तिष्क में ऐसा दृष्टिकोण विकसित करो कि:–

(22) दूसरा व्यक्ति हमारे प्रति अपनी मर्जी से सोचने, बोलने और करने में स्वतन्त्र है।

व्यक्ति के प्रति जब अन्याय होता है तो चिन्तन करने का ढंग यह होना चाहिए कि इसने मेरे संग अन्याय किया है और करेगा ही क्योंकि ये व्यक्ति स्वतंत्र है। केवल ईश्वर के साम्राज्य में अन्याय नहीं होता है। मनुष्य के समाज में, मनुष्य के राष्ट्र में, मनुष्य के परिवार में, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति अन्याय करता है। बलवान व समृद्ध व्यक्ति अपने साथ किये जा रहे अन्याय को रोक देता है और कमजोर व्यक्ति अन्याय को सहन कर लेता है। लेकिन

आध्यात्मिक आदमी, धार्मिक आदमी, विद्वान् आदमी, ब्राह्मण व्यक्ति, योगाभ्यासी व्यक्ति उस अन्याय को जो कि व्यक्तिगत हानि तक सीमित है, उसको एक सीमा तक प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है। वह अन्याय करने वाले के प्रति कल्याण की कामना करता है।

इतना सब कुछ हमारे मन में बैठ जाए तो समस्याओं का एक बहुत बड़ा भाग हम सहन कर सकते हैं, उनका समाधान कर सकते हैं। विशेषकर सामाजिक कार्य करने वाले अथवा समाज से हटकर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर इस प्रकार के आक्षेप, इस प्रकार के आरोप लगाये जायेंगे, उसके साथ विश्वासघात, निंदा, चुगली आदि किए जाएंगे।

आश्रमों और गुरुकुलों में लोग घर बार छोड़ करके आते हैं। वे जिस समाज से आये हैं, जिस नगर, गांव से आये हैं, जिन परिवारों में से आए हैं, वहां का अधिसंख्य व्यक्ति दार्शनिक दृष्टिकोण से अज्ञानी रहता है, मूर्ख रहता है। इसलिए वे आश्रम में रह रहे व्यक्ति पर आरोप लगाएंगे, संशय करेंगे और कहेंगे कि – घबरा गया, कमाना नहीं आता था, पुरुषार्थ नहीं होता है, हराम का खाना चाहता है, भीख माँग के खाना चाहता है या घर से लड़ाई हो गई, झगड़ा हो गया, घर में बनती नहीं थी या उसको प्रतिष्ठा चाहिए, मान चाहिए इसलिए आश्रम में रहने को आ गया। जो वानप्रस्थ लेगा, उसके साथ भी ऐसा ही घटित होगा।

भूमिका–अपने अलावा किसी और पर हमारा नियन्त्रण नहीं है। हम सर्वशक्तिमान नहीं हैं। इसलिए :–

(23) हम किसी को अपनी मनमर्जी के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के बारे में विचारने के लिए स्वतंत्र है और वह विचारेगा ही। हम उसको रिमोट से कंट्रोल नहीं कर सकते। किसी व्यक्ति को ऐसा विचारने के लिए मना नहीं कर सकते कि वह ऐसा नहीं विचारे कि मैं घबरा गया, घर से बनती नहीं थी, इसलिए आश्रम में रहने को आ गया। वह तो विचारेगा ही। विचारने के लिए वह स्वतंत्र है। अगर उसने विचार लिया तो कोई बात नहीं। लेकिन यह सोच–सोच के हम परेशान न हों कि उसने ऐसा क्यों विचार लिया, मैं तो ऐसा हूँ नहीं, मैं तो अपनी प्रतिष्ठा के लिए निकला नहीं, मैं तो विद्या के लिए निकला हूँ, भीख माँगने की इच्छा है ही

नहीं, मैं तो पुरुषार्थ करता हूँ और यहाँ भी करता हूँ। फिर भी उसने ऐसा क्यों कहा ?

इस प्रकार अन्य व्यक्ति के विचारने के ऊपर, बोलने के ऊपर, करने के ऊपर हम मन के अंदर यह भावना बना लेते हैं कि उसने ऐसा क्यों किया? कम से कम इस व्यक्ति को तो मेरे साथ ऐसा नहीं करना चाहिए था। यह तो मेरा बहुत घनिष्ठ था। यह तो मुझे जानता था, पहचानता था, उसे कम से कम इतना बुरा विचार तो मेरे प्रति नहीं करना चाहिए था। उदाहरण मात्र देता हूँ। लोग हमसे खूब झूठ बोलेंगे, हमारे साथ अपना वचन भंग करेंगे। प्रायः व्यक्ति अवसर मिलते ही झूठ बोलता है। आज तो अवसरवाद घर–घर में घुस गया है। व्यक्ति प्रायः अवसरवादी है, गिरा हुआ है, स्वार्थी है। ***हमारे विषय में दूसरा व्यक्ति अपशब्द बोलेगा, निंदा करेगा, चुगली करेगा, संशय करेगा, कुछ भी करेगा। इसके लिए वो स्वतंत्र है।***

इसका समाधान यही है कि यह स्वीकार कर लिया जाये कि मेरे विषय में कोई भी व्यक्ति कभी भी कैसा भी विचार कर सकता है। इस तरह से व्यक्ति को विचारना आ जाए तो उसका समाधान निकला निकलाया है। फिर समस्या रहती ही नहीं। बहुत सी समस्याओं का समाधान हो जाता है। इसके विपरीत अगर यह विचार मन में आता है कि उसने मेरे विषय में ऐसा क्यों कह दिया ? उसे ऐसा नहीं कहना चाहिये था। बस, इस विचार को लेकर उस व्यक्ति को नींद नहीं आती है, भूख नहीं लगती है, पढ़ाई नहीं होती है, स्वाध्याय नहीं होता है, वह काम नहीं करता, वह बस सोचता रहता है कि – ''उसने ऐसा क्यों कह दिया, ऐसा क्यों विचार लिया, उसने ऐसा क्यों कर दिया ? वह तो बड़ा बुद्धिमान है, मेरा बहुत घनिष्ठ आदमी है, मेरा मित्र है, मेरे परिवार का व्यक्ति है। ऐसा व्यक्ति मेरे बारे में ऐसा विचार करेगा तो सामान्य व्यक्ति पता नहीं क्या विचार करेगा ? ऐसे में मेरे बारे में बात खूब फैलेगी। फैलते–फैलते सारे व्यक्ति मेरे विषय में ऐसा विचार करेंगे। ऐसे में बड़ा अनर्थ होगा, बदनामी होगी, इसको रोकना चाहिए, इसका स्पष्टीकरण करना चाहिए, उसको बुलाना चाहिए, पत्र लिखना चाहिए। इत्यादि।

यह चिन्तन करने का अलग ढंग है। हमारे विषय में लोगों ने झूठे पत्र बहुत लिखे हैं। न केवल गुजरात में बल्कि हर जगह से पत्र भेजे गए। हमने उन पत्रों पर न विचार किया, न उसके ऊपर किसी को शिकायत की, कि

हमारे विषय में झूठे पत्र लिखे जा रहे हैं। कुछ नहीं किया हमने। कोई मिल जाए तो ये कह देते हैं कि आपको पत्र की बात सही लग रही है तो मान लो, नहीं तो फाड़कर फेंक दो। हमको देख लो, यहां आकर देखो, क्या है हमारा जीवन। यदि व्यक्ति इस प्रकार के पत्र को पढ़कर इस प्रकार का समाधान नहीं निकाल पाएगा तो मर जाएगा, पागल हो जाएगा।

चिंतन करने की शैली यही है कि हम एक ही सिद्धांत बनाकर अपने मन में रखें कि कोई भी व्यक्ति हो, एक छोटा सा पाँच वर्ष का बच्चा क्यों न हो, वह दूसरे व्यक्ति के विषय में अपनी मनमर्जी से विचारने, बोलने और करने में स्वंतत्र है। ऐसी विचारधारा रखना इस समस्या का बहुत बड़ा समाधान है।

यह भी निश्चित है कि दस, बीस, पचास, सैकड़ों व्यक्ति ऐसे मिल जाएँगे जिनके मन में हमारे विषय में भ्रान्तियाँ बनी हुई हैं। ***कोई व्यक्ति दुनिया में ऐसा नहीं मिलेगा, जिसके ऊपर उँगली न उठे।*** कल्पना कीजिए किसी विद्यालय में दस–पन्द्रह ब्रह्मचारी हैं। उनके विषय में किसी एक व्यक्ति के मन में ये संशय उत्पन्न हो सकता है कि ये झूठ बोलता है, ये स्वार्थी आदमी है, ये आलसी आदमी है, ये कामचोर है। वह ऐसा विचार कर सकता है, और यही बात दूसरे से कह भी सकता है। इन्हें नहीं भी कह पाया तो मन के अंदर तो विचार सकता है कि इसका इंद्रियों में संयम नहीं है, ये लोभी आदमी है, ये आराम पसंद आदमी है, ये अहंकारी आदमी है। इस तरह का कुछ भी विचार कर सकता है।

अब वह ब्रह्मचारी अन्दर ही अन्दर सफाई देते रहे कि इसने मेरे विषय में कह दिया कि मैं बड़ा अहंकारी हूँ जबकि मैं तो अहंकारी हूँ ही नहीं। मैं तो बहुत विनम्र हूँ। मैं तो कोई भी काम सरलता से कर देता हूँ। मैंने किसी के प्रति कठोर बोला नहीं। मेरे को ये कैसे कह रहा है कि मैं अभिमानी हूँ और यह सोच–सोच कर वह दुःखी हो जाये। यह अनिष्ट चिंतन की शैली है, इसे न अपनाएँ।

भूमिका:–विचार का सही तरीका रखना चाहिए क्योंकि :–

(24) सही चिंतन शैली दुःख से बचाती है।

व्यक्ति निरभिमानी है, सरल है, विनम्र है लेकिन उसे चिन्तन करना नहीं आयेगा तो वह व्यक्ति दुःखी हो जाएगा। ***विनम्र होते हुए भी, निरभिमानी***

होते हुए भी, सरल होते हुए भी, सत्यवादी होते हुए भी, त्यागी होते हुए भी, तपस्वी होते हुए भी, पुरुषार्थी होते हुए भी, अगर चिन्तन करने की शैली नहीं आएगी तो वह दुःखी हो जाएगा। संध्या करते हुए भी, स्वाध्याय करते हुए भी और यज्ञ करते हुए भी दुःखी हो जायेगा।

एक दूसरा व्यक्ति ज्ञान न होने से, अपने स्वार्थ के कारण से, गलत परंपराओं से, सुनी सुनाई बातों पर ठीक प्रकार से चिन्तन न करने के कारण, किसी अन्य कारण से मेरे विषय में गलत विचार कर सकता है। उसे मेरे प्रति संशय हो सकता है। मेरे आचरण के प्रति मिथ्या धारणा हो सकती है। व्यक्ति को बस इस विषय पर विचार करना चाहिए। यह समस्या का बहुत बड़ा समाधान है।

चिन्तन करने की यह शैली आध्यात्मिक है, धार्मिक है, दार्शनिक है। एक विचार, एक सिद्धांत, एक शैली को मन में रखने से जो पचास व्यक्ति, पचास प्रकार की समस्यायें हमारे सामने उपस्थित करते हैं, जिनसे हम प्रायः ग्रस्त और दुःखी रहते हैं, खिन्नता की स्थिति मन में रहती है, वे सारी मिट सकती हैं।

भूमिका–अगर भगवान पर भरोसा है तो मत घबराओ। कारण कि, घबराकर आज तक किसी को भी किसी समस्या का समाधान नहीं मिल पाया। अपितु इससे सबने अपने रूप, बल, स्वास्थ्य, ज्ञान और जीवन का जल्दी से विनाश ही किया है और पापोन्मुख कर अपने को पतित किया है। घबराहट अज्ञान की निशानी है और अज्ञानी की हार निश्चित है। आचार्यवर कहते हैं :–

(25) समस्या से घबराओ मत।

व्यक्ति अपने विशिष्ट कार्यों को करते हुये विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रस्त होता ही है। समस्याओं के निवारण के विषय में हम विचार कर रहे हैं। किसी भी समस्या के उपस्थित होने पर व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिये, दुःखी नहीं होना चाहिये, चंचल नहीं बनना चाहिये, विवेकहीन नहीं बनना चाहिये, अपितु साहसपूर्वक उस समस्या के कारणों को ठीक प्रकार से समझ करके और मन के अन्दर शक्ति, साहस, बल, पराक्रम, ज्ञान–विज्ञान, सामर्थ्य, धैर्य आदि प्रदान करने की परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रायः देखने में आता है कि व्यक्ति किसी भी विकट परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर उससे तत्काल प्रभावित होकर दुःखी हो

जाता है, अपने विवेक को खो देता है, धैर्यहीन होकर के भूखा–प्यासा, विक्षुब्ध, मूढ़ अवस्था वाला बनकर के अंततः पागलपन की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। वह आगे चलकर अपना, अपने परिवार का, स्वजनों का, परिजनों का, अहित करता है। उस समस्या के कारण अपनी मानसिक स्थिति को गिराकर के अनिष्ट कार्यों को करता है। थोड़ी सी असावधानी रखकर के विमूढ़ हो करके व्यक्ति अनिष्ट कार्यों को कर बैठता है। जिसके कारण फिर वह जीवनपर्यन्त पश्चात्ताप् की अग्नि में, ग्लानि की अग्नि में, दंड व दुःख की अग्नि में जलता रहता है।

भूमिका–ईश्वर के सहयोग से कार्य तीव्रता से होता है क्योंकि ईश्वर मन में प्रेरणा, उत्साह और सामर्थ्य प्रदान करता है। आचार्यवर कहते हैं :–

(26) समस्या आने पर ईश्वर से सहयोग लो।

प्रतिकूलताओं के उपस्थित होने पर व्यक्ति को चाहिये कि धैर्यपूर्वक एकांत स्थान में, मौन और गंभीर होकर के, ईश्वर से गद्गद् होकर के, प्रेमपूर्वक, श्रद्धान्वित होकर के प्रार्थना करे कि– हे परमेश्वर, इस समय मैं संकट की घड़ियों से घिर आया हूँ, मेरे ऊपर अन्याय हो रहा है, झूठे आरोप लगाये जा रहे हैं, मेरी भर्त्सना की जा रही है, ताड़ना की जा रही है, मेरी निंदा की जा रही है, मेरे साथ विश्वासघात हुआ है, छल कपट हुआ है, मेरी हानि हुई है। इससे मैं व्यथित हो गया हूँ, दुःखी हो गया हूँ, चंचल हो गया हूँ। हे परमेश्वर ! मेरे को शक्ति दो, बल दो, ज्ञान–विज्ञान दो, सामर्थ्य दो, उत्साह दो, पराक्रम दो, ताकि इस प्रतिकूल परिस्थिति के अंदर मैं अपने चित्त को अच्छे प्रकार से स्थिर बनाए रखूँ। आपकी कृपा से इस कठिनाई के दौर को मैं पार कर लूँ, प्रसन्नचित्त बना रहूँ।

व्यक्ति को किसी भी विकट परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर सर्वप्रथम धैर्यपूर्वक शांत होकर के, गंभीर होकर के, एकांत–सेवन करना चाहिये। अकेले में आसन लगाकर, आँखें बंद कर, चित्त की वृत्तियों को रोककर परमपिता परमात्मा से ज्ञान–विज्ञान माँगना चाहिये, सामर्थ्य माँगना चाहिए, बल, साहस और पराक्रम देने की याचना करनी चाहिये।

यह दोहा सुनने में आया होगा कि ''दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय, जो सुख में सुमिरन करे, दुःख काहे को होय''। लेकिन ये

करे। प्रायः ऐसा देखने में आया है कि समस्या के सामने उपस्थित होने पर व्यक्ति विक्षुब्ध हो जाता है, बिल्कुल विवेक खो देता है।

होता ये है कि, ***महत्वपूर्ण बातों को जब याद रखने की आवश्यकता पड़ती है, उस समय व्यक्ति भूल जाता है।*** वो कथा सुनी होगी आपने। एक व्यक्ति ने कबूतरों को सलाह दी कि बहेलिया आता है और आपको पकड़ लेता है। आप मेरे से पाठ पढ़ लो। याद रखना–बहेलिया आयेगा, जाल बिछायेगा, दाना डालेगा और फँसना नहीं। व्यक्ति ने पूछा– सीख लिया। कबूतरों ने कहा– हाँ सीख लिया। कुछ दिनों बाद बहेलिया आया और वे बोलते गये दाना खाते गऐ और बोलते–बोलते उसके जाल में फँस गये।

आज का व्यक्ति तो यह भी नहीं बोलता है। उसके ऊपर आपत्ति आती है, कठिनाई आती है, समस्या आती है, प्रतिकूलता आती है, तो उस समय ईश्वर को याद करना ही भूल जाता है, बिल्कुल पागल बन जाता है, एकदम नास्तिक बन जाता है। जो व्यक्ति आँख बन्द कर ध्यान में आधा घंटा, एक घंटा बैठता था, कठिनाई आने पर तो उसको बिल्कुल ही भूल जाता है। कहता है – नहीं, अब तो मेरे से संध्या होगी नहीं, उपासना होगी ही नहीं, निदिध्यासन होगा ही नहीं। बिल्कुल उल्टी परिस्थिति बन जाती है। जब ईश्वर को अधिक मात्रा में याद करना चाहिये, उस समय बिल्कुल याद नहीं करता। होना यह चाहिए कि प्रतिकूल परिस्थितियों में, समस्याओं के उपस्थित होने पर, अभाव होने पर, अन्याय होने पर, व्यक्ति को ईश्वर का स्मरण करना चाहिये।

किसी विद्यार्थी को जब मैं दंड देता हूँ, ताड़ना करता हूँ, भर्त्सना करता हूँ और फिर उनके हाव भाव को, चाल को और आँखों को देखता हूँ, तब मुझे प्रतीति हो जाती है कि इसमें सहनशक्ति, धैर्य है या नहीं। ***चाहे घोर अन्याय हो रहा है, चाहे झूठा आरोप लगाया जा रहा है, चाहे संशय किया जा रहा है, और व्यक्ति दोषी नहीं है, उसने त्रुटि नहीं की है, उसने भूल नहीं की है, फिर भी उस समय आध्यात्मिक आदमी को सतर्क व सावधान होकर के अपनी स्थिति को नहीं खोना चाहिये।*** अपितु ये कहना चाहिये–आज मेरी परीक्षा है। इस समय मुझ पर नितांत झूठा आरोप लगाया जा रहा है, गलत संशय किया जा रहा है, मेरी भर्त्सना की जा रही है, ताड़ना की जा रही है, दंड दिया जा रहा है, इत्यादि। लेकिन मैं इस समय प्रसन्न रहूँगा, खुश रहूँगा, दुःखी नहीं होऊँगा। ये परीक्षा है मेरी, जिसमें मुझे

दोहा आजकल नहीं चलता है। आजकल तो व्यक्ति सुख में भी ईश्वर को याद नहीं करता है और दुःख में भी याद नहीं करता है। दुःख में थोड़ा बहुत याद करने की लोगों की जो प्रवृत्ति थी, वो भी अब समाप्त हो गई। ***दुःख आने पर ईश्वर की उपासना को, यज्ञ को, स्वाध्याय को, आत्मनिरीक्षण को, निदिध्यासन को, आत्मचिंतन को, व्यक्ति नहीं करता है। उस समस्या का समाधान करने के लिए अनेक प्रकार के साधनों को संग्रहित करने की अनिच्छा हो जाती है। समस्या से पीड़ित व्यक्ति केवल रोता है, चिल्लाता है, दुःखी होता है और पागल बन जाता है।***

वस्तुतः होना ये चाहिये कि चाहे हम कहीं पर भी हों, घर में हों, मकान में हों, बाहर सड़क पर हों, बाहर कार्यालय में हों, फैक्ट्री में हों, बस में हों, ट्रेन में हों, प्लेन में हों, भीड़ में हों, किसी भी प्रकार की विकट प्रतिकूल परिस्थिति सामने उत्पन्न होने पर एक तो तत्काल चुप हो जायें, शांत हो जायें, गंभीर हो जायें और दूसरा कार्य प्रार्थना का करें। हम परमपिता परमात्मा से तत्काल प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! हमको इस विकट परिस्थिति का सामना करने के लिए शक्ति दो, बल दो, पराक्रम दो, मुझमें उत्साह प्रदान करो, मैं हताश–निराश न होऊँ, दुःखी न होऊँ, पागल न होऊँ, मैं अपना और परायों का अनिष्ट न करूँ। एकांत में जाकर के तत्काल बारम्बार ईश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये।

प्रार्थना करने पर हमें दो प्रकार के लाभ होते हैं। पहला लाभ ये है कि, वह जो समस्या है, उसको व्यक्ति भूल जाता है, उससे मन हटता है। दूसरा लाभ यह है कि ईश्वर की उपासना करने से ईश्वर से बल मिलता है, ज्ञान मिलता है, आनन्द मिलता है, उत्साह मिलता है और पराक्रम मिलता है।

ईश्वर की उपासना न करने से दो हानियाँ होती हैं। एक तो ईश्वर से जिन विषयों में लाभ उठाना चाहिये, ज्ञान–विज्ञान आना चाहिये, वह प्राप्त नहीं होता है। और व्यक्ति समस्या से ग्रस्त होकर के दुःखी होता है। व्यक्ति समस्या से प्रभावित होकर के और अधिक अनिष्ट कार्यों को करता है। एक तो समस्या के कारण अनिष्ट हुआ ही है, और अनिष्टता के कारण अपने चित्त को अनिष्ट चिंतन करके और अधिक अनिष्ट कार्यों को करता है। इसलिए व्यक्ति को चाहिये कि समस्याओं के उपस्थित होने पर सर्वप्रथम व्यक्ति यह कार्य करे कि एकांत स्थान में जाकर, ईश्वर से शक्ति बल, पराक्रम प्राप्त

चाहिये। यदि पति गिरता है तो पत्नी को यह कार्य करना चाहिये। भाई–भाई के विषय में, बाप–बेटे के विषय में, सास–बहू के विषय में, गुरु–शिष्य के विषय में भी इसी प्रकार का नियम लागू होता है। हम सब भूलें करते हैं, त्रुटियाँ करते हैं। आप भी गलत कार्य करते हैं, मैं कभी–कभी भूलवश गलत कार्य कर बैठता हूँ। जैसे आदर्श गुरु शिष्य को सहन करता है, उसी प्रकार शिष्य में भी सहन करने का सामर्थ्य होना चाहिये। विद्यार्थी को तो विशेषकर सहन करना चाहिये क्योंकि विद्या अध्ययन का काल निर्माण का काल है।

प्रतिकूल परिस्थितियों में कठिनाईयाँ व समस्यायें उपस्थित होने पर व्यक्ति को, एकांत स्थान में बैठकर, आँखे बंद कर समस्त विषयों से मन को हटाकर परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये। ये बहुत बड़ा समाधान है। ये काम कभी भी हो सकता है। खड़े –खड़े हो सकता है, बाजार में हो सकता है, सभा में हो सकता है। एक मिनट के लिये शांत हुये और व्यक्ति को ईश्वर शक्ति दे देता है, साहस, बल, पराक्रम देता है। बस एक मिनट की बात है। इस एक ही मिनट में व्यक्ति का अनिष्ट हो जाता है और एक मिनट में इष्ट भी हो जाता है।

भूमिका–प्रकृति से बनी हर चीज बदलती है। इसलिए :–

(27) कोई भी समस्या सदा नहीं रहती।

समस्याओं के उपस्थित होने पर ऐसा विचार भी करना चाहिए कि प्रत्येक दिन समान नहीं होते हैं। संसार का कोई भी दिन, कोई भी क्षण, समान रूप से व्यक्ति को प्रभावित नहीं करता है। ***हर पल सृष्टि–चक्र चल रहा है। कभी सुख है, कभी दुःख है, कभी दिन है, कभी रात है, कभी भूख है, कभी अजीर्ण है। इसी प्रकार सृष्टि की हर चीज बदलती रहती है। बदलते–बदलते वही व्यक्ति बंधन को प्राप्त होता है और वही मुक्ति को भी प्राप्त होता है। शरीर और मन में कभी रजोगुण उभरता है तो कभी तमोगुण, तो कभी सत्त्वगुण। व्यक्ति कभी धार्मिक बनता है, तो कभी अधार्मिक बनता है। दूसरे व्यक्ति भी हमारे प्रति कभी धार्मिक होते हैं, कभी अधार्मिक होते हैं। उनके अन्दर कभी हमारे प्रति परोपकार की भावना आती है, और वे ही कभी हमारा शोषण भी करते हैं। रात आने पर जैसे व्यक्ति को विचार करना चाहिये कि दिन भी आयेगा। ऐसे ही दिन आये तो विचारना चाहिए कि रात आएगी ही। दिन सदा नहीं रहेगा।***

पास होना है। जो व्यक्ति इन प्रतिकूल परिस्थितियों की परीक्षा में पास हो जाता है, वो दुनियाँ में कभी घबराता ही नहीं।

महान आदमी वही है, जो अपने सामने आने वाली बड़ी से बड़ी, पहाड़ के समान समस्याओं को सहन कर लेता है। मैं विद्यार्थियों का सामर्थ्य बनाने का प्रयास करता हूँ। मेरे मन में आशंका रहती है कि कहीं यह विद्यालय से भाग न जायें, दुःखी न हो जायें, कहीं ये मेरे प्रति श्रद्धा को समाप्त न कर दें, मेरे प्रति वितर्क न उठा लें। घाव के ऊपर टिन्चर आयोडीन लगती है तो व्यक्ति कष्ट से चरमराता है। किसी गुरु को अपने शिष्य को ताड़ना करने में मजा नहीं आता है। लेकिन शिष्यों के कल्याण के लिए, सुधार के लिए, सहनशक्ति बढ़ाने के लिये गुरु ऐसा करते हैं। गुरु की ताड़ना को, भर्त्सना को, कोप को, अन्यथा नहीं लेना चाहिए। विद्यार्थियों की भूल को मैं प्रेमपूर्वक भी बता सकता हूँ। परन्तु विद्यार्थियों का सामर्थ्य बढ़ाने के लिए, परीक्षा लेने के लिए मैं जानबूझकर अनेक बार ये प्रयोग करता हूँ।

वही व्यक्ति श्रेष्ठ है, वही महान् है, वही योगी है, वही बुद्धिमान है, वही धार्मिक है, वही आस्तिक है, जो कठोरतम परीक्षाओं को पार कर लेता है, और विचलित नहीं होता है। यह देखने में आता है कि प्रायः व्यक्ति छोटी–छोटी प्रतिकूलताओं से बाधित होकर और तत्काल अपने स्तर को खोकर, अपने स्तर को गिराकर अपना और अन्यों का भयंकर अनिष्ट कर लेते हैं और अपने बहुमूल्य जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं।

आपको देखने को मिलेगा कि व्यक्ति की इज्जत, व्यक्ति की प्रतिष्ठा, व्यक्ति का विश्वास, व्यक्ति के प्रति निष्ठा, व्यक्ति के प्रति श्रद्धा, वर्षों में बनती है। हम किसी एक व्यक्ति से बार–बार विनम्रता से निवेदन करेंगे, उसकी सेवा करेंगे, परोपकार करेंगे, उससे मिलेंगे, उसकी सहायता करेंगे, दान देंगे, उसके कष्टों को सहन करेंगे, प्रतिकूलताओं को सहन करते–करते, दो–तीन–दस –बीस वर्षों में उसके मन में हमारे प्रति श्रद्धा बनती है कि ये व्यक्ति बिल्कुल ठीक है। ***जो मूर्ख आदमी होता है, असहनशील व्यक्ति होता है, वह बीस साल में अपने प्रति बनाई गई श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास और प्रेम को गलत वाक्यों का उच्चारण कर, अनुचित प्रतिक्रियाएँ कर, अनिष्ट चिंतन कर, दुष्कृत्यों को कर, दो मिनट के अंदर नष्ट भ्रष्ट कर देता ह।***

पति–पत्नी का संबंध होता है। कभी पति गिरता है, कभी पत्नी गिरती है। कभी पत्नी गिरती है तो पति को सम्भालना चाहिये, धैर्य बनाये रखना

को यह मानना चाहिये कि यह तो मेरी परीक्षा हो रही है। आज मेरी परीक्षा है कि मुझे इतना अपमानित किया गया है, मेरे ऊपर आरोप लगाया गया है, इतनी कठिनाई आ गई है, मेरे साथ अन्याय हुआ है, पक्षपात हुआ है। मगर मैं नहीं घबराऊंगा।

भूमिका:–आचार्यवर द्वारा आगे कही जा रही बात को अच्छे से गले उतारने के लिए पहले यह याद रखना जरूरी है कि – गर्भाशय रूपी अंधेरी, सकरी काल कोठरी में कैद अकेला जीवात्मा गर्भावस्था में माँ की दया पर जीता है। जन्म लेने पर शरीर में कोई न कोई रोग लगा रहता है। अपने अज्ञान के कारण छोटा बच्चा कई प्रकार से दुःख उठाता है। भूख–प्यास, सर्दी–गर्मी, अंधेरा–उजाला उसे दुःखी करते हैं। मक्खी, मच्छर, चींटी, तिलचट्टा या अन्य कीड़े–मकोड़े असहाय बालक को परेशान करते हैं। कभी पड़ोसी परेशानी पैदा कर देते हैं। थोड़ा बड़ा होने पर बच्चे को मार–मार कर स्कूल भेजा जाता है। सुनने–पढ़ने, रटने में आँख, मन, बुद्धि आदि पर पड़ा दबाव उसे कष्ट देता है। बस से खड़े–खड़े स्कूल जाना, डीजल की बदबू, बस से निकला धुंआ, गाड़ी के झटके और सड़क पर उड़ती धूल उसका जी खराब कर देती है। जवानी में राग–द्वेष, अभिनिवेश आदि क्लेशों और जिम्मेदारियों के कारण वह दुःखी रहता। मान–अपमान, हानि–लाभ आदि स्थितियाँ उसे दुःखी कर देती हैं। बुढ़ापा आता है तो अक्षम शरीर फिर दुःख देता है। सूक्ष्मता से देखें तो पता चलेगा कि व्यक्ति दिनभर शारीरिक स्तर पर दुःखी होता है। आगे वह मानसिक स्तर पर दुःखी होता है। इस प्रकार दुनियांभर के दुःख पैदा होने के बाद ही तो मिलते हैं। इसलिए आचार्यवर कहते हैं:–

(29) जीवन एक समस्या है।

कोई भी व्यक्ति इस संसार में समस्या से रहित नहीं है और न होगा। मोक्ष में, मुक्ति में जाकर के अवश्य व्यक्ति समस्या से रहित होता है अन्यथा संसार में रहते हुए समस्या बनी रहती है। ये जीवन ही एक समस्या है। जीवन प्राप्त करना, शरीर के बंधन में आना, ये जीवात्मा के लिए समस्या है। जब तक जीवन रहेगा, ये समस्याएँ बनी रहेंगी। इस दृष्टिकोण से व्यक्ति को विचारना चाहिये।

पहले फिल्मों में अच्छे गाने भी आते थे। आपने मदर–इंडिया पिक्चर देखी होगी। विश्वप्रसिद्ध पिक्चर है ये। इसको बहुत अवार्ड मिले हैं। इसमें एक गीत था, ''दुनिया में अगर आये हैं तो जीना ही पड़ेगा, जीवन है अगर जहर, तो पीना ही पड़ेगा। घिर–घिर के मुसीबतों में संभलते ही रहेंगे, गम आये अगर राह पे, चलते ही रहेंगे। गम जिसने दिये हैं, वही गम दूर करेगा, दुनिया में अगर आयें है तो जीना ही पड़ेगा।''

यह बहुत प्रेरक गीत है। इसका अर्थ यह निकालना चाहिए कि हमने असावधानी, प्रमाद, गलत कार्यों और कुकर्मों के कारण दुःख उठाये, ईश्वर ने हमको कर्मों का दंड दिया। अब हम सावधानीपूर्वक, सफलतापूर्वक अच्छे कार्यों को करेंगे तो ईश्वर हमको सुख देगा। गीत का यह अर्थ न निकालें कि ईश्वर अपनी स्वेच्छा से हमे सुख–दुःख देता है।

भूमिका :–जो सही है, वह कभी अकेला नहीं होता। विपत्ति में बहुमत उसके साथ में सहानुभूति रखता। उसकी सच्चाई दबकर फिर कभी लोगों के सामने उजागर हो जायेगी। इसलिए अंततः उसकी जीत होगी, हार नही। आखिरकार संसार को उसके सामने झुकना पड़ेगा। आचार्यवर यह सवाल कर रहे हैं कि :–

(28) 'हम सही हैं', तो फिर डर कैसा।

हमें यह विचार करना चाहिये कि मैं गलत तो नहीं हूँ, अगर गलत हूँ तो अपनी गलती का सुधार करना चाहिये। गलत नहीं हैं तो पूरा परीक्षण करके ईश्वर के समक्ष अपने आप को उपस्थित करके अच्छी तरह से आत्मनिरीक्षण करके देखना चाहिए कि मैं गलत नहीं हूँ, चाहे दुनियां मुझे कुछ भी कहती रहे। दुनियां की सुनना ही नहीं, उस पर ध्यान देना ही नहीं, घबराना ही नहीं।

दुष्ट व्यक्ति अत्यंत जघन्य कार्यों को करके भी घबराते नहीं हैं, डरते नहीं हैं। एक भला आदमी, एक बुद्धिमान आदमी, एक धार्मिक आदमी जो अच्छा ही कर रहा है, कभी किसी का बुरा नहीं कर रहा है, उसके ऊपर झूठे आरोप लगाये जा रहे हैं, उसकी प्रताड़ना की जा रही है, उसे लज्जित किया जा रहा है, अपमानित किया जा रहा है, उसके साथ विश्वासघात और छल–कपट किया जा रहा है, अन्याय किया जा रहा है, शोषण किया जा रहा है, तो फिर वह क्यों घबराए ? घबराना नहीं चाहिये बल्कि उस समय व्यक्ति

का समाधान इस एक वाक्य के अंदर समाया हुआ है। जीवात्मा के अतिरिक्त कई प्रकार के जड़ पदार्थ हैं, जैसे– भूमि, भवन, सोना, चाँदी। चेतन चीजों के अन्तर्गत पुत्र, पत्नी, मित्र, गुरू, आचार्य, पड़ोसी, या अन्य कोई भी प्राणी आ गये। जड़ पदार्थ के अन्तर्गत शरीर भी आ गया, बुद्धि भी आ गई, मन भी आ गया, यहाँ तक कि ज्ञान विज्ञान भी आ गया।

दान की प्रवृत्ति, सेवा भाव, साधना आदि विशेष गुण जीव ने ईश्वर से प्राप्त किये हैं। ये गुण जीवात्मा के पास में नहीं हैं। जीवात्मा के पास में केवल चेतनता है, ग्राह्य शक्ति (ज्ञान को ग्रहण करने की शक्ति) है। जितने भी गुण जीवात्मा में आये हैं, ये या तो प्रकृति के सानिध्य से आये हैं अथवा ईश्वर के सानिध्य से आये हैं। एक व्यक्ति बहुत बलवान है। ये सारा का सारा बल जो व्यक्ति के पास है, वो प्रकृति की ओर से आया है, अथवा ईश्वर की ओर से मिला है। स्वयं के पास में इतना बल नहीं है। रूप, विद्या, वाणी, सेवाभाव, विनम्रता, संयम, सरलता, पुरूषार्थ, तपस्या, त्याग, निष्कामता, सहनशीलता, आदि–आदि जो कुछ भी गुण उसके पास में हैं और कर्म करने का सामर्थ्य है, वो सारे के सारे गुण–धर्म ईश्वर और ईश्वर प्रदत्त इस प्रकृति से बने पदार्थों के माध्यम से मिले हैं। ईश्वर की सहायता के बिना तो अकेले प्रकृति भी उसे कुछ नहीं दे सकती।

इन जड़ और चेतन पदार्थों और गुणों को जो जीवात्मा अपना मानता है, वह दु:खी होता है। शास्त्रों में देवदत्त नाम के एक व्यक्ति का उदाहरण दिया गया है, जिसकी एक गाय मर गई, दूसरी गाय मर गई, तीसरी गाय भी मर गई। मरी है गाय, लेकिन देवदत्त बोलता है– हाय, मैं मर गया। ये दर्शनकार सूक्ष्म विषयों को कितनी सरलता से, स्पष्टता से समझा देते हैं।

पुत्र के मरने पर बाप रोता है। हाय, मैं मर गया। ऐसे ही चोर ले गये धन। चोर उसके शरीर को नहीं ले गये, उसके ज्ञान–विज्ञान को नहीं ले गये, उसकी आत्मा को नहीं ले गये। फिर भी वो कहता है–हाय, मुझको ले गये। हाय, मैं लुट गया। यद्यपि ये ''मैं लुट गया'' वाक्य का दोनों अर्थों में प्रयोग होता है। मैं लुट गया मतलब मेरा धन लुट गया। दूसरा अर्थ जिसमें प्रयोग होता है, वह यह कि पैसा जाने के साथ–साथ मेरी आत्मा भी कट के चली गई। ये अज्ञान है।

हमें यह बात अच्छे से समझनी चाहिये। ***कोई किसी को कितना ही दु:ख दे, कितना ही काटे, शरीर को जलाये, ये सब की सब शरीर***

शास्त्रकारों ने बताया कि प्रकृति के साथ में जीवात्मा का सम्बन्ध होता है। उस समय जीवात्मा प्रकृति के साथ में संयुक्त होने के कारण प्रकृति से सम्बन्धित जो गुण हैं, उन्हीं गुणों से युक्त हो जाता है, उनसे प्रभावित हो जाता है। ये सब अज्ञान के कारण से होता है।

भूमिका–**जब व्यक्ति दूसरों की चिन्ता को अपनी चिन्ता मानकर उसकी चिन्ता में मरा जाता है, तो कहा जाता है –**

ऊंट लदे, और गधा गिर–गिर जाये।
हाय राम, ये बोझ कौन ले जाए।।

मतलब, लद तो रहा है ऊंट, और चिन्ता गधे की हो रही है कि यह बोझ कैसे लेकर जायेगा। इसी प्रकार जो हम नहीं हैं, जो हमारे गुण नहीं हैं, जो चीज आत्मा से अलग है, इन सब पदार्थों में आत्मा का बोध यानि ये मैं हूँ, ये मेरा है, ये मेरी चीज है, ऐसा मान लिया जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति अपने आप में दूसरों को देख रहा है। इस प्रकार वह सपनों की दुनिया का प्राणी, वह जो नहीं है, उसी को अपने अन्दर अभिव्यक्त करने में, स्वयं को 'दुनियाभर' दिखाने की चेष्टा में, स्वयं को खर्च कर रहा है। यह सब क्या बकवास है ? यह कुछ नहीं, केवल जीवात्मा का मिथ्या ज्ञान है। पराये को अपना समझना परेशानियों का कारण बनता है। आचार्यवर कहते हैं–

(30) अपने से भिन्न पदार्थों को अपना मान लेना समस्या पैदा करता है।

अज्ञानी होने के कारण, प्राकृतिक पदार्थों के ऊपर नियंत्रण न रखने के कारण, प्रकृति के सानिध्य में आने के कारण, प्रकृति के जो गुण हैं, उन गुणों को जीवात्मा अपने अंदर आधारित मान लेता है। उन गुणों से अपने आप को प्रभावित मानकर के वह सुखी–दुःखी और मोहित होता है।

एक बहुत सूक्ष्म बात योगदर्शन के व्यास भाष्य में आई है। वाक्य है–*व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वामात्मत्वेनाभिप्रतीत्य तस्य संपदमनुनन्दत्यात्म–संपदम् न्वानस्तस्य व्यापदमनुशोचत्यात्मव्यापदम् मन्वानः स सर्वोऽ–प्रतिबुद्धः इति।*

कितनी गहराई की बात यहां पर कही गई है। इस एक सिद्धांत को समझ लेने के उपरांत व्यक्ति के पास कोई समस्या रहती नहीं है। समस्त समस्याओं

के ऊपर क्रियाएँ होती हैं। एक व्यक्ति किसी व्यक्ति को कितना दुःख दे सकता है। ज्यादा से ज्यादा वो उसके शरीर को जलायेगा, काटेगा, तलेगा, सुखायेगा, टुकड़े–टुकड़े करेगा या छिलका उतार लेगा। ये सारी की सारी क्रियायें शरीर में होती हैं। ये आत्मा में नहीं होती हैं। आत्मा तो नित्य, अविनाशी और अपरिवर्तनशील है। मगर इन परिस्थितियों से गुजरने पर जीव ये मानता है कि मेरी आत्मा को काट रहा है, मेरी आत्मा को जला रहा है, आत्मा को छील रहा है। ये अज्ञान मन–मस्तिष्क में बना हुआ है।

मुनियों ने दुःखों का निवारण करने के लिये बहुत सुंदर उपाय दर्शनों में बताये हैं। उन उपायों को ठीक प्रकार से जानकर समझकर और उनको क्रियान्वित करके, उनका अभ्यास कर लेने पर कोई व्यक्ति कभी भी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से दुःखी हो ही नहीं सकता। ऋषियों के बहुत से उदाहरण भी मिलते हैं। जो व्यक्ति किसी वस्तु को अपना मानेगा ही नहीं कि ये मेरी है तो फिर दुःख किस बात का होगा। होगा ही नहीं। जो अपनी मानता है तभी तो दुःख होता है।

जैसी मन की वृत्ति, वैसे अपने आप को मानना, ''ये वृत्तिसारूप्यम् है''। और ''वृत्तिवैरूप्यम्'' है– ये मन की वृत्तियाँ हैं, ये मेरे से अलग हैं। भवन, धन, बंधु–बांधवों, सज्जनों, शरीर, मन, बुद्धि और संस्कारों को अपनी आत्मा से अलग मानना है– ''वृत्तिवैरूप्यम्''। वृत्तिवैरूप्यम वाला व्यक्ति ''योगी'' होता है। वृत्तिसारूप्यम वाला व्यक्ति भोगी और लौकिक होता है।

भूमिका–चीजों को बहुत मेहनत से कमाया जाता है। इसलिए:–

(31) पास में मौजूद चीजों की सुरक्षा करनी चाहिए।

असावधान रहना अच्छा नहीं है। हमारे पास में मौजूद चीजों की चोरी नहीं होने देनी चाहिए। तात्पर्य है कि– हम अपने पदार्थों की ठीक प्रकार से रक्षा करें, अपने शरीर की ठीक प्रकार से रक्षा करें। लेकिन रक्षा करने पर भी, सावधानी रखने पर भी हानि हो सकती है। यदि हानि होती है तो फिर व्यक्ति को उसमें पश्चाताप, ग्लानि या दुःख व्यक्त नहीं करना चाहिये। ये होता है, होता आया है। ये शाश्वत सिद्धान्त है, ऐसा मानकर चलना चाहिये।

(32) ढीठ की तरह बनकर प्रतिकूलताओं को प्रभावहीन करें।

चोरी किसके यहाँ नहीं होती। सबके यहाँ चोरियाँ होती हैं। कौन किसके पदार्थों को चुराता नहीं है, किसके साथ विश्वासघात नहीं हुआ, कौन वचन

भंग नहीं करता, कौन आरोप नहीं लगाता, कौन किसके ऊपर संशय नहीं करता, कौन छल–कपट से युक्त नहीं हुआ। प्रायः हर व्यक्ति कभी न कभी छल–कपट से युक्त हुआ है, और आगे भी होगा। हम पर संशय किया जायेगा, हमारी हानि की जायेगी, हमारे साथ विश्वासघात खूब हुआ है और आगे भी होगा। हमसे झूठ भी बोला जायेगा, हमारी निंदा भी की जायेगी। ये सारे के सारे प्रतिकूल कार्य होंगे। ये होंगे तो फिर क्या उपाय है ? उपाय ये ही है कि इनको आत्मा तक न पहुँचने दिया जाये। बस, कान तक रखा जाये। आपने सुनी होगी ये कहावत– ''इसको कितना ही सुनाओ, इसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगती है,'' अर्थात् बात इसके अंदर नहीं जाती है। इस पर किसी बात का कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता है।

एक आदमी होता है ढीठ। ढीठ आदमी को कितना ही सुनाओ कि– ऐसा काम मत करो, यह गलत है, यह खराब है, यह अधर्म है, चोरी है, छल है, कपट है, पाप है, बुरा है, अन्याय है। उसकी बुराईयों को कितना ही बताओ मगर वह सुनता ही नहीं है। लेकिन ***ढीठ होना एक गुण भी है। इस गुण को आध्यात्मिक आदमी अपने जीवन में इस प्रकार से अपना ले कि कोई व्यक्ति मुझ पर झूठा आरोप लगायेगा, मेरी निंदा करेगा, मेरे साथ विश्वासघात करेगा, छल–कपट करेगा तो मैं ढीठ की तरह उसका अपने ऊपर कोई प्रभाव नहीं आने दूँगा।*** जो ढीठ व्यक्ति होता है। वह अपने ऊपर कोई प्रभाव आने देता ही नहीं। आपमें भी इस गुण का कोई न कोई तो अंश होगा।

आध्यात्मिक आदमी अपने ऊपर लगाये गये समस्त आरोपों, विश्वासघातों, छल–कपटों, अन्यायों, निंदाओं व चुगलियों को ढीठ की तरह बस सुन लेता है, कान तक रखता है परन्तु अपनी बुद्धि में नहीं आने देता। आता है तो उसको स्टोर करके रख देता है, मगर उससे प्रभावित नहीं होता है।

ये सारा का सारा सामर्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। इस सामर्थ्य को प्राप्त करने का नाम ही योगाभ्यास है, यम–नियम का पालन है। ***जो व्यक्ति अपने ऊपर लगाये गये समस्त आरोपों, निंदा, विश्वासघात, छल–कपटों, चुगली, प्रतिकूलताओं व बाधाओं को सुनकर जितना सहन कर लेगा, उतना ही उसका मार्ग प्रशस्त हो जायेगा, उसको कोई बाधा होगी ही नहीं। जिसके पास ये सामर्थ्य नहीं है, वो रुक जाता है। अपनी निंदा होते ही उससे प्रभावित हो गया और आदमी रुक गया।***

आपने कथा सुनी होगी कि किसी को काम करने के लिये भेजते हैं तो वो बाजार के अंदर जहाँ नाच हो रहा है, गाना हो रहा है, तमाशा हो रहा है, उसको देखने में लग जाता है। उसमें खो जाता है। वो बाधक है। ठीक ऐसे ही आध्यात्मिक आदमी के जीवन के अंदर बाधा आती है, जैसे कि किसी आदमी ने निंदा व चुगली की, आरोप लगाया, विश्वासघात किया, छल–कपट किया और उसको लेकर के दु:खी होना, विचारते रहना, चिंतन करते रहना और मन में ग्लानि होना। ये परिणाम हैं। बाधाओं को सामने पाकर अपनी शांति को नष्ट कर लेना, अपनी प्रसन्नता को नष्ट कर देना, अपनी एकाग्रता को नष्ट कर देना और अपने मुख्य लक्ष्य से हट जाना, ये हानिकारक है।

पता लगा कि मेरी हानि हुई है, मुझ पर आरोप लगाया गया है, चुगली हुई है, निंदा हुई है, रोग हो गया है, विश्वासघात हुआ है, वियोग हो गया है, वचन भंग हो गया है, झूठ बोला गया है आदि इन बातों को सुनकर यह सोचना चाहिए कि– ये तो होता है, होता आया है। ये तो करेंगे लोग। क्या गजब हो गया ऐसा। कुछ भी नहीं हुआ। मैं इसका अपने मन के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ने दूँगा। ऐसा सोचने वाला व्यक्ति अपने मुख्य कार्यों को करने लग जाता है।

(33) शास्त्रों के रहस्य को जानने से योगी बनना सरल होता है।

शास्त्रों को पढ़ने के बाद, चिंतन करने के बाद इतनी सरलता से मन की गुत्थियाँ खुल जाती हैं कि योगी बनना अत्यधिक सरल हो जाता है। सामान्य व्यक्ति ये विचार करता है कि योगी बनना बहुत कठिन है। यह तब तक कठिन है, जब तक कि शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को जाने नहीं, समझे नहीं, उनका अभ्यास न करें। ***अभ्यास करने के उपरांत योगी बनना, योगी बने रहना अत्यंत सरल हो जाता है।*** इसमें कोई कठिनाई नहीं आती है।

स्व–स्वामी संबंध छूटा और योगी बन जायेगा। ईश्वर प्रणिधान हुआ और योगी बन जायेगा। व्याप्य–व्यापक (मैं व्याप्य और ईश्वर मुझमें व्यापक) भाव बना लो, योगी बन जायेगा। वृत्ति वैरूप्यम बनाओ, योगी बन जायेगा। वशीकार संज्ञा बना लो, योगी बन जायेगा। विवेक–ख्याति उत्पन्न कर लो, योगी बन जायेगा। अविद्या को नष्ट करो, योगी बन जायेगा। ये योगी बनने की स्थितियाँ हैं। इन सारी बातों को, दर्शनों का स्वाध्याय करके, चिंतन करके, व्यवहार में लाकर के संभव किया जा सकता है।

जब किसी पदार्थ मात्र की भी इच्छा न रहे तो बाधक क्या बचा ? इसलिए उसको कष्ट होता ही नहीं। उसकी कोई इच्छा, अपेक्षा, कामना नहीं रहती। जब तक इच्छा रहती है, तब तक कष्ट की स्थिति बनी रहती है। मन के अन्दर किसी पदार्थ के विषय में स्व–स्वामी संबंध नहीं है। न मेरा शरीर है, न मेरा घर है, न पत्नी है, न ज्ञान–विज्ञान है, न धन है तो फिर मुझसे कोई क्या लेगा।

जीवात्मा जैसा है, वैसा ही है। अनादि काल से वह अज्ञानी है। मोक्ष में भी वह ईश्वर की अपेक्षा से मूर्ख रहता है। स्व–स्वामी संबंध टूटने पर व्यक्ति ईश्वर–प्रणिधान, निष्काम–भावना, विवेक–ख्याति और वशीकार–संज्ञा से युक्त होगा ही। संसार में किसकी कोई इच्छा, अपेक्षा, मांग, कामना ही नहीं है ? कौन मूर्ख नहीं है ? अनादिकाल से जीवात्मा मूर्ख है, और मूर्ख रहेगा ही। मोक्ष में मूर्ख रहेगा ही। ईश्वर के आगे मूर्ख ही है जीवात्मा। भले ही वह मोक्ष को प्राप्त कर ले। मोक्ष की स्थिति में भी ईश्वर जितना ज्ञान नहीं हो पाता है। व्यक्ति सरलता से, सहजता से, जैसा वो है, ऐसा अपने आपको मानने लग जाये और जैसी स्थिति है, वो स्थिति अपने सामने ले आये।

कितना खोलकर के लिख दिया ऋषियों ने। जिसने अविद्या को नष्ट किया वह तत्काल योगी बन जाता है। कोई समस्या है ही नहीं। जड़ को जड़, चेतन को चेतन, सुख को सुख, दु:ख को दु:ख, अपवित्र को अपवित्र, पवित्र को पवित्र और अनित्य को अनित्य, नित्य को नित्य समझा और योगी बना। ये सारी की सारी चीजें जो हैं एक–दूसरे के भाई हैं, एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हैं। स्व–स्वामी संबंध तोड़ा तो व्यक्ति ईश्वर–प्रणिधान से युक्त, निष्काम–भावना वाला, विवेक–ख्याति वाला, स्वस्थ, ज्ञान–विज्ञान वाला और वृत्तिवैरूप्यम वाला होगा। ये सारी स्थितियाँ एक ही हैं।

जो मनुष्य अपनी आत्मा को समस्त जड़ और चेतन पदार्थों से अलग कर लेता है, इन्हें अपने से अलग रूप में देखता है तो इनसे अपना स्व–स्वामी संबंध नहीं बनाता है। वह इनका अधिकारी नहीं बनता है। ऐसे व्यक्ति के पास समस्या आयेगी ही नहीं। जिसने अपनी आत्मा को जान लिया है और जो अपनी आत्मा से अलग समस्त पदार्थों को जानता है, वह अपने दिमाग में बनाकर चलता है कि जो चीज मैं लाया नहीं, वो मैं ले जाऊँगा भी नहीं। जो मेरी थी नहीं, वो मेरी होगी भी नहीं। ये शरीर मेरा नहीं है और रहेगा भी नहीं। ये सारा संसार जन्म लेने के बाद मैंने इकट्ठा किया है। जो इकट्ठा

किया है, वह अलग होगा। कारण कि, जो संयोग (संयुक्त) होता है, उसका वियोग होता है। पत्नी मरेगी एक दिन, पति भी मरेगा, घर छूटेगा, सारा का सारा संसार जितना हमने बनाया, वह छूटेगा। जो यहाँ पर मित्र, साथी, पुत्र, पड़ोसी, ये शरीर है– सब छूटेगा।

जो हमने अपने जीवन में स्वभाव बनाया है, वह हमारा स्वभाव अगले जन्म में भी रहेगा। देने का स्वभाव, प्रेम से बोलने का स्वभाव, सहनशक्ति का स्वभाव, पुरुषार्थ करने का स्वभाव, विनम्रता का स्वभाव, धैर्य रखने का स्वभाव, सत्य बोलने का स्वभाव, प्रेम से रहने का स्वभाव, ये सभी स्वभाव रहेंगे। जिस कार्य को बार–बार करते हैं, वह हमारे स्वभाव में आ जायेगा। ये संस्कार अधिक मात्रा में बन जायेंगे। वो संस्कार जीवात्मा और मन में रहेंगे। वो मन संस्कारों को साथ में लेकर जायेगा। अगले जन्म में वो ही देने का, प्रेमयुक्त रहने का, सहनशक्ति का, धैर्य का, विनम्रता का, पुरुषार्थ का स्वभाव रहेगा। आलस्य – प्रमाद नहीं होगा। इस प्रकार ये स्वभाव हमारे साथ में रहता है। इसको संस्कार कहते हैं, वासनाएँ कहते हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि – ***जो व्यक्ति अपने आप को संसार, संसार के पदार्थों और यहाँ तक कि इस शरीर से भी अलग मानकर चलता है, जो ये मानता है कि–मैं जीवात्मा हूँ और मेरे पास की सारी चीजें ईश्वरप्रदत्त हैं, ये मेरी नहीं हैं, मुझे मिली जरूर हैं। इतना मानकर चलने वाला व्यक्ति स्व–स्वामी संबंध से रहित हो जाता है। इससे उसकी कोई समस्या नहीं रहती।*** समस्या है ही नहीं। कोई कितना ही कहे, कितना छीन ले, कितना ही चुरा ले, कितना ही अपमान करे, कितना रोग हो, पीड़ा हो, दुःख हो तो भी समस्या नहीं आती।

भूमिका–आचार्यवर समस्या से लेकर विनाश तक का क्रम स्पष्ट कर रहे हैं :–

(34) समस्या से दुःख, दुःख से द्वेष, द्वेष से अनिष्ट कर्म और उससे विनाश होता है।

तीन रास्तों में से किसी एक में भी व्यक्ति असफल होता है। जैसे– समाधान नहीं निकाल पाता अथवा सहन नहीं कर पाता अथवा उपेक्षा नहीं कर पाता तो समस्या उस व्यक्ति को विक्षिप्त कर देती है, क्षुब्ध कर देती है, विचलित कर देती है, रजोगुण या तमोगुण से युक्त कर देती है। आगे

चलकर व्यक्ति उस समस्या से ग्रस्त होकर अनिष्ट चिंतन करके, अनिष्ट वाणी का प्रयोग करके और अनिष्ट कार्यों को करके अपना विनाश कर लेता है। विवेक को खोकर, बुद्धि को नष्ट भ्रष्ट कर, आदर्श मर्यादाओं, व्रत्तों, संकल्पों, विधि–विधानों और आदर्श परंपराओं को भुलाकर अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का भी विनाश कर देता है। इसलिए बुद्धिमान, विवेकी व्यक्ति को चाहिये कि वह समस्याओं का समाधान प्राप्त करने का सामर्थ्य, योग्यता और युक्ति (तरीका) प्राप्त करे, अथवा उसको सहन करने का सामर्थ्य प्राप्त करे अथवा उसको उपेक्षित रखने यानि उसको अपने से अलग करने का सामर्थ्य प्राप्त करे।

भूमिका–निंदा में, आर्थिक संकट में और भय आदि विकार उत्पन्न करने वाली विपत्तियों के हल करने के उपायों का विचार करते हुए धैर्यवान पुरुष दृढ़ता से और मजबूती से अपने काम में डटा रहता है, अड़ा रहता है, स्थिर रहता है। वह तो मार्ग से एक कदम भी विचलित नहीं होता है, इसलिए अपने काम को बीच में नहीं छोड़ता है। इस प्रकार विपत्ति में व्यक्ति के धैर्य की परीक्षा होती है। धैर्यवान की प्रशंसा होती है। वह हिम्मत वाला, दिलेर और साहसी कहलाता है। उसकी प्रतिभा निखरती जाती है। धैर्यवान अपनी जिन्दगी के जिस लक्ष्य को प्राप्त करने की इच्छा करता है, सफलता उसकी दासी के रूप में काम कर वह सब उसे प्राप्त करा देती है। इसके विपरीत अध ीर जल्दी रास्ते से डगमगा जाता है, कच्चा और कमजोर पड़ जाता है। उसके पैर उखड़ जाते हैं, उसका काम बिगड़ जाता है। सभी कार्यों में आतुरता दिखाने वाला व्यक्ति असफल हो जाता है। उसकी विपत्ति दोगुनी हो जाती है। धैर्यहीन को हर जगह धिक्कारा जाता है। इसलिए कहा जाता है– जितनी जल्दबाजी, उतनी ही देर। सबक यही है कि भड़भड़िये मत बनो। थोड़ा सब्र करो। धैर्य की प्रशंसा में आचार्यवर कहते हैं–

(35) धैर्य रखना समस्या का एक हल है।

उपायों के सहयोग से समस्याओं का समाधान हो सकता है अथवा उनको सहन कर सकते हैं अथवा उसकी उपेक्षा कर सकते हैं, उनको टाल सकते हैं। एक उपाय है– धैर्य, जिसको संस्कृत के अंदर ''धृति'' कहा गया है। ध

ार्मिक व्यक्ति का सबसे प्रथम गुण महर्षि मनु ने धैर्य बताया है। जो धैर्यवान होता है, उस व्यक्ति के सामने कई समस्यायें आती तो हैं पर वे उसको आंदोलित नहीं करती हैं, उसको रजोगुण में प्रविष्ट नहीं कराती हैं, उसको विक्षिप्त नहीं करती हैं, उसके मन को क्षोभयुक्त, हताश, निराश नहीं करती हैं।

भूमिका–आचार्यवर धैर्य से होने वाले लाभ की सीमा को बता रहे हैं :–

(36) धैर्य से समस्या टलती है।

धैर्य एक बहुत बड़ा गुण है। धैर्य की ही बहन क्षमा है। व्यक्ति धैर्य धारण कर ले, लेकिन क्षमा करना न आये, तो धैर्य समाप्त होते ही फिर समस्या उठ खड़ी होती है। तब व्यक्ति क्रोधित, प्रतिशोध की भावना वाला, मन से प्रज्वलित, द्वेषयुक्त होकर अनिष्ट चिंतन करता है।

धैर्य धारण करने पर समस्या का अंत नहीं होता है। धैर्य से समस्या केवल टलती है या उपेक्षित रहती है। इस अन्तर को समझना चाहिये। मान लीजिए किसी व्यक्ति ने हमारे प्रति झूठा आरोप लगाया, हमारी निंदा की, चुगली की, हानि की, अपकार किया, विश्वासघात किया, छलकपट किया, अन्याय किया, पक्षपात किया इत्यादि। उसकी इन क्रियाओं को देखकर सहन करना, प्रतीक्षा करना, परीक्षा करना और गवेषणा करना कि भविष्य में कब तक ये ऐसा करता है, कितने काल तक मेरे साथ दुष्टता करता है, कितने स्तर तक करता है, कितनी बार करता है और कहाँ–कहाँ करता है। इन सब चीजों का परीक्षण करते रहना और मन के अंदर प्रतीक्षा करते रहना।

धैर्य के काल की सीमा का निर्धारण व्यक्ति के स्तर और जिस प्रकार की समस्या है, उसको देखकर के किया जाता है। धैर्य पाँच मिनट का भी होता है, घंटे भर का भी होता है, एक माह, एक साल का भी होता है और बहुत लंबे काल तक का भी होता है। यह व्यक्ति के ऊपर और घटना के ऊपर आश्रित (आधारित) है।

भूमिका–क्षमा कहते हैं– दूसरे व्यक्ति की गलतियों, भूलों या अपराध आदि का प्रतिकार, प्रतिघात या प्रतिशोध न करना। उसके कृत्यों को भूल जाना और उसे दण्ड न देकर उसके अपराध को माफ कर देना।

जो क्षमाहीन, न भूलने वाला होता है, दूसरे की गलतियों को गवारा नहीं करता है, उन्हें सहन नहीं करता है, वह जैसे के साथ

तैसा सिद्धांत का उपयोग कर बदले की आग में जलकर दूसरे से हिसाब बराबर करता है। आचार्यवर क्षमा की प्रशंसा कर रहे हैं:–

(37) क्षमा समस्या का एक उपाय है।

धैर्य गुण धारण करने वाला व्यक्ति ही क्षमा गुण को धारण करता है। क्षमा एक अलग भाव है, धैर्य एक अलग भाव है। क्षमा करना भी समस्या का एक बहुत बड़ा समाधान है। लेकिन जो व्यक्ति धैर्यवान नहीं है, वो क्षमाशील नहीं हो सकता। धैर्य व क्षमा का अविनाभाव अनिवार्य संबंध होता है। धैर्यवान व्यक्ति ही क्षमाशील होता है। ***क्षमाशील ही अप्रतिशोध की भावना रखने वाला व्यक्ति होता है। वही पी लेता है– समस्या को, प्रतिकार को, आक्षेप को, हानि को, निंदा को, चुगली को।*** इसी कारण से नीतिकारों द्वारा क्षमा को आध्यात्मिक व्यक्ति का बहुत बड़ा आभूषण बताया गया है।

(38) आध्यात्मिक आदमी बहुत बड़ा क्षमाशील होता है।

आध्यात्मिक आदमी बहुत बड़ा क्षमाशील होता है। अपने ऊपर किये गये अत्यन्त अपकारों, हानियों, और आरोपों को भी आध्यात्मिक व्यक्ति बहुत बड़ी सीमा तक सहन कर लेता है। दुनियां में जितने भी महापुरुष हुये हैं, उनमें कोई भी ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें क्षमा गुण न हो। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हम कह रहे हैं, कि ब्राह्मणों को, योगियों को, योगाभ्यासियों और ईश्वर भक्तों को तो क्षमा गुण का पूर्णरूपेण आचरण करना चाहिये। क्षत्रियों को हम यहाँ पर नहीं ले रहे हैं। क्षत्रियों की क्षमा कुछ नीतियों से, कुछ सिद्धांतों से बंधी हुई होती है। ब्राह्मण, योगी, योगाभ्यासी और ईश्वर भक्त सीमारहित क्षमा की भावना रखता है।

भूमिका–क्षमा क्रोध रूपी झगड़े की जड़ को मिटाकर क्षमाशील व्यक्ति के जीवन में शांति लाती है। क्षमा की प्रशंसा में आचार्यवर कहते हैं –

(39) क्षमा से समस्या का अंत हो जाता है।

धैर्य धारण करना समस्या का स्थायी समाधान नहीं है। अस्थायी समाधान है। लेकिन ***क्षमा कर देना अंतिम निर्णय ले आता है कि अब आगे कुछ नहीं करना है।*** धैर्य धारण करने वाला व्यक्ति घटना को भूलता नहीं है। अपने स्मृति कोष के अंदर उसे बनाये रखता है और उसका आगे

परीक्षण करता है कि देखते हैं, अब ऐसी परिस्थिति में और क्या करेगा ? कब करेगा ? कितना करेगा ? कैसे करेगा ? इस प्रकार का परीक्षण चलता रहता है। लेकिन जब क्षमा सामने आ जाती है, तो समस्या का समाधान निकल जाता है। वहाँ पर धैर्य नहीं रहता। धैर्य समाप्त हो जाता है और क्षमा कर देता है। यदि क्षमा गुण हमारे पास में हो तो हम अपनी बहुत–सी समस्याओं का समाधान निकाल सकते हैं।

(40) विवेक सहनशक्ति का व सहनशक्ति क्षमा की जननी है।

क्षमा का सम्बन्ध सहनशीलता से है। जिस व्यक्ति में जितनी सहनशीलता है, वह उतना ही क्षमावान होता है । सहनशीलता का सम्बन्ध ज्ञान–विज्ञान से है, जिसको विवेक कहते हैं, बुद्धिमत्ता कहते हैं। ***जो व्यक्ति जितना अधिक बुद्धिमान, विवेकी और ज्ञानी होगा, वह उतनी मात्रा में सहनशील होगा। जितनी मात्रा में व्यक्ति सहनशील होगा, उतनी मात्रा में वह क्षमा कर सकेगा।*** इनके साथ तारतम्य जुड़ा होता है। कारणकार्य भाव भी इसे कह सकते हैं।

भूमिका–क्षमा समर्थों का, वीरों का, तेजस्वी पुरुषों का आभूषण है। क्षमा सबसे उत्तम बदला भी है, क्योंकि इससे दूसरे पर विजय प्राप्त हो जाती है। आचार्यवर की सीख यही है कि –

(41) क्षमा करें।

क्षमा करना आध्यात्मिक व्यक्ति का बहुत बड़ा गुण है। शूद्र, अविवेकी, स्वार्थी, भोगी, रजोगुणी, अधार्मिक व जो असहनशील होता है, वो क्षमा नहीं करता है। दस साल की बात दूर रही, साल भर की बात दूर रही, महीने भर की बात दूर रही, एक सप्ताह की बात दूर रही, तत्काल कोई चीज या क्रिया उसके सामने आती है, तो वह प्रतिक्रिया करने को उद्यत रहता है। वह एक बार भी धैर्य धारण नहीं करता है। उसे सहन नहीं करता है। उसके सामने कोई भी प्रतिकूल परिस्थिति आती है तो तत्काल मन के अन्दर प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है और वह उसका प्रतिकार करने का प्रयास करता है।

अभ्यास कर मन में क्षमा की भावना बनायी जाती है। अनेक बार देखने में आता है कि एक बार, दो बार, तीन–चार बार, कई बार क्षमा करने के उपरांत व्यक्ति अपना धैर्य खो देता है, अपनी सहनशक्ति खो देता है।

अब वह क्षमा नहीं करता है। अब वह उसकी प्रताड़ना करता है, उसको दंड देता है और मन के अदर विरोधी के प्रति दुर्भावना उत्पन्न कर लेता है। मन में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति द्वेष से अन्दर ही अन्दर जलता है, उसका विरोध करता है, युद्ध करता है, संघर्ष करता है।

जिसका ज्ञान–विज्ञान ऊँचे स्तर का है, जो विवेकी व्यक्ति है, धैर्यवान है, वो पाँच–दस बार में नहीं, दो–चार दिन में नहीं, वो दसों बार, बीसों बार, पचासों बार व्यक्ति को सहन करता है और कई दिनों तक नहीं, कई सप्ताह तक नहीं, कई मास तक नहीं, कई वर्षों तक सहन करता है और क्षमा करता रहता है।

यह क्षमा व्यक्ति के विवेक, सहनशक्ति, धैर्य आदि के ऊपर आश्रित होती है। व्यक्ति का जितना विशाल हृदय होता है, वह उतना ही बड़ा धैर्यवान होता है, वह उतना ही बड़ा सहनशील होता है, उतना ही क्षमाशील होता है। विद्वानों के जीवन में हम यह देख सकते हैं। स्वामी दयानंद जी का जीवन देखें, कितनी क्षमा की उन्होंने। उन्होंने आततताईयों को क्षमा किया, जो तलवार लेकर आये, जिन्होंने साँप फेंके, जिन्होने जहर दिया, जिन्होंने बलि चढ़ाने का प्रयास किया, पानी में डुबाने का प्रयास किया, जिन्होंने न जाने कितने–कितने प्रकार से कष्ट देने का प्रयास किया, उन्होने उन सबको क्षमा किया। ये गुण विशाल हृदय का द्योतक है।

भूमिका:–क्षमा करें क्योंकि–

(42) क्षमा व्यक्ति को प्रगति की राह पर चलाती है।

यदि व्यक्ति के पास क्षमा का गुण न हो तो समस्याओं के उत्पन्न होने पर वह उसके समाधान में ही उलझा रहता है। वह उसी का चिंतन करेगा, उसी का समाधान करने और उसी का स्पष्टीकरण करने में लगा रहेगा। इससे वह अपने मुख्य काम पर कोई ध्यान ही नहीं दे पायेगा।

यदि क्षमा की भावना नहीं होगी तो उसकी स्वयं की उन्नति, योगाभ्यास, अध्ययन, अध्यापन, परोपकार, सेवा और आध्यात्मिक उन्नति के कार्य ठप्प हो जायेंगे। व्यक्ति घंटो तक, दिनों तक, सप्ताहों तक, मासों तक, वर्षों तक उस छोटी–सी बात पर चिंतन करता रहेगा। सारी शक्ति, ज्ञान–विज्ञान और बल उसी पर लगा रहेगा। इससे बहुत बड़ी हानि होगी।

आप अनुभव करेंगे या आपने किया होगा कि समस्या आई और हमने धैर्य धारण कर लिया और क्षमा कर दिया, सहन कर लिया

तो आगे अध्ययन करने में, योगाभ्यास करने में, स्वाध्याय करने में, आत्म चिंतन करने में, कुछ विशेष गवेषणा (खोज) करने में हमें और समय मिलता है। उससे कुछ उन्नति कर सकते हैं।

इसके विपरीत, यदि समस्या आ गई और हम उसका समाधान नहीं कर पाये तो अशांत, चंचलचित्त होकर उसी क्षेत्र में लगे रहते है, उसी का चिंतन, उसी की योजना में लगे रहते हैं अर्थात् ये करेंगे, ऐसा करेंगे, इसी उधेड़बुन में लगे रहते हैं। इस प्रकार हमारी सारी शक्ति उसी में लग जाती है।

क्षमा का व्यवहार है तो किसी ने कोई अपकार किया, तो हम उसे सहन कर लेंगे, क्षमा कर देंगे, भुला देंगे और अपने कार्यों में फिर से लग जायेंगे। जो कार्य हमारे लिए मुख्य हैं, हम उसे करते रहते हैं। ऐसी सुन्दर स्थिति बनती है।

व्यक्ति के जीवन में देखने में आता है कि जब स्वयं से भूल होती है, गलती होती है, त्रुटि होती है, दोष होता है तो वो मन में दूसरों से यह अपेक्षा करता है कि मुझे क्षमा किया जाये, मुझ पर दया की जाये, मुझ पर कृपा की जाये। वो चाहता है कि– मेरी प्रताड़ना न की जाये, मुझे कोई दंड न दिया जाये, मुझे लज्जित न किया जाये। लेकिन जब वही चीज, वही घटना उसके साथ दूसरा व्यक्ति करता है तो वह उसको सहन नहीं कर पाता। इसलिए उसको लज्जित करने, उसको दंड देने, उसको दोषी ठहराने, उसके प्रति अनेक प्रकार के आक्षेप लगाने, और उसके प्रति द्वेष करने की इत्यादि स्थितियाँ उसके मन में बन जाती हैं। ये बड़ी अन्याय की स्थिति है।

झूठ के विषय में भी ऐसा ही है। व्यक्ति स्वयं दूसरों के साथ झूठ बोलता है, लेकिन इस झूठ के लिए उसके मन में कोई क्षोभ, दुःख, पीड़ा, चिंता, भय, ग्लानि नहीं। जब उसी प्रकार का, उसी स्तर का झूठ स्वयं के प्रति कोई दूसरा व्यक्ति बोलता है तो वह भयंकर आग बबूला हो जाता है। तब उसे बड़ा बुरा लगता है। ये बड़ी विचित्र स्थिति है।

इसी प्रकार अन्याय, अधर्म व पक्षपात के विषय में होता है। ***जैसे हम अपने लिये चाहते हैं कि हमें क्षमा किया जाये, हमें दोबारा अवसर दिया जाये, ऐसे ही दूसरे व्यक्ति भी चाहते हैं कि भूल से, प्रमाद से, आलस्य से, शीघ्रता में या अन्य किसी कारण से उनसे त्रुटि हो गई है, कोई समस्या पैदा हो गयी, कोई हानि हो गई, तो उन्हें क्षमा***

किया जाये। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि मुझे अवसर दिया जाये, अवसर से रोका न जाये। हमारे मन में ऐसी भावना आनी चाहिये।

भूमिका–व्यक्तिगत सहनशीलता सर्वोत्तम उपलब्धि है, इसलिए:–

(43) व्यक्तिगत हानियों के लिए क्षमा करना चाहिए।

किसको, कब, किस विषय में, किस स्तर तक क्षमा करना चाहिये, सहन करना चाहिये, ये विषय बहुत गंभीर, दार्शनिक और आध्यात्मिक है। व्यक्तिगत हानियों के लिये, व्यक्ति बहुत सीमा तक दूसरों को सहन कर सकता है, क्षमा कर सकता है।

यदि मात्र व्यक्तिगत दृष्टिकोण से हानि होती है तो वह सहन करनी चाहिए। उदाहरण देखना है तो स्वामी दयानन्द जी का उदाहरण देख सकते हैं। हम सुनते हैं, पढ़ते हैं– गाली देने वाले एक व्यक्ति को वे मिठाई भिजवाते थे। उसके गाली देने से उनको व्यक्तिगत रूप से कोई हानि नहीं हो रही थी। गाली देने वाला मूर्ख आदमी था, प्रतिष्ठित नहीं था, समृद्ध नहीं था जिससे समाज में कोई प्रभाव पड़े।

भूमिका–आचार्यवर राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का निर्देश कर रहे हैं:–

(44) समाज–राष्ट्र की हानि सहन नहीं करें।

सहन करने का उपाय लौकिक क्षेत्र में नहीं चलेगा, क्षत्रियों में नहीं चलेगा, वैश्यों में नहीं चलेगा लेकिन ब्राह्मणों में चल सकता है। ब्राह्मण भी अन्याय को एक सीमा तक सहन करेगा, उस सीमा के बाद वह सहन नहीं करता है। वह सीमा क्या है? जब समाज को हानि होती है, राष्ट्र को हानि होती है, उस अन्याय को सहन करने से जन–जन में कुप्रभाव पड़ता है तो वह सहन नहीं करेगा। पंडितों ने, अंधविश्वासी व्यक्तियों ने ऐसे कार्य किये जिनका समाज पर गलत प्रभाव पड़ा। उनके बारे में महर्षि दयानंद ने अपनी ओर से खूब गर्जना की, खूब ताड़ना की। अपनी पुस्तकों में कठोर शब्दों का प्रयोग किया।

(45) समाज, राष्ट्र को हानि पहुँचाने वाले को क्षमा नहीं मिलनी चाहिए।

जहाँ किसी व्यक्ति से सामाजिक दोष होते हों, राष्ट्रीय दोष होते हों, जिससे समाज के बहुत बड़े वर्ग की हानि हो रही हो, अपकार हो रहा हो,

अनर्थ हो रहा हो, वहाँ पर कब, कितना, किस स्तर तक क्षमा किया जाये, सहन किया जाये, धैर्य रखा जाये, ये एक विभज्यवचनीय विचार का विषय बन जाता है।

कुछ व्यक्ति ***जब अत्यन्त अनिष्टकारी कार्यों को करने वाले को क्षमा करते हैं, उसकी उपेक्षा करते हैं तो यह बड़ा हानिकारक हो जाता है।*** इसलिए जहाँ सामाजिक, राष्ट्रीय हानियों की बात होती है, वहाँ पर देखा गया है कि कतई क्षमा नहीं की जाती है। उसकी खूब भर्त्सना की जाती है, प्रताड़ना की जाती है, शोक व्यक्त किया जाता है। यह देखना है तो स्वामी दयानंद जी के ग्रंथों को देख सकते हैं। पौराणिकों के प्रति, पोपों के प्रति, पाखंडियों के प्रति, अंधविश्वासियों के प्रति, कैसे भयंकर कठोर शब्द लिखे हैं कि गर्भ में ही क्यों नहीं मर गये।

विशेषकर जो व्यक्ति दुष्ट स्वभाव का है, योजनाबद्ध रूप में अत्यंत हानि करने के उद्देश्य से, अत्यंत वितंडा करके या बहुत बड़ा षडयंत्र रच करके मिथ्या आरोपों को लगाकर और बहुत बड़ी सामाजिक हानि करने के दृष्टिकोण से कुकृत्यों को करता है और समस्यायें पैदा करता है, तो ऐसे व्यक्ति को क्षमा कर देना हानिकारक हो जाता है। दुष्टों के कुकृत्यों को यदि व्यक्ति क्षमा करता है तो वह क्षमा नहीं होती है। वह गुण नहीं, अवगुण हो जाता है। समाज, राष्ट्र के लिये घातक कार्यों को करने वाले व्यक्तियों को तो कदापि क्षमा नहीं करना चाहिये। उनको तत्काल रोकना चाहिये। जैसे– ईश्वर रोकता है, राजा रोकता है, न्यायाधीश रोकता है। वह तो उसके ऊपर दया है। ऐसा मानना चाहिए।

भूमिका–दुनिया देखकर मैंने यह सीखा है कि सफलता का रास्ता भूलों के बीच से होकर गुजरता है। गलतियां तो हर मनुष्य करता है, कभी जानबूझकर तो कभी अनजाने में, कारण कि, मनुष्य अल्पज्ञ है। आचार्यवर के शब्दों में:–

(46) प्रत्येक व्यक्ति से भूल होती है।

एक विषय हमारे सामने आया। समस्याओं के समाधान का एक बहुत बड़ा उपाय है– क्षमा करना। प्रत्येक व्यक्ति से भूल होती है, त्रुटि होती है, दोष होता है। **अज्ञान, शीघ्रता, आलस्य, प्रमाद और बौद्धिक स्तर के ऊँचा–नीचा होने के कारण सभी से दोष होता है।** उसको क्षमा करना

चाहिये। प्रायः देखने में आया है कि– क्षमा न करने के कारण मन के अंदर जीवनपर्यंत गाँठ बन जाती है। वह ग्रन्थि मन–मस्तिष्क में बनी रहती है।

भूमिका:–क्षमा कब करें ?

(47) तत्काल क्षमा करें।

अवसर मिलने पर क्षमा प्रकट होती है। क्षमा आज करनी है, अभी करनी है। यदि हम एक सप्ताह, एक माह, एक साल के बाद क्षमा करते हैं, तो उसकी कोई कीमत नहीं रहती। विषय के स्तर को विचार करके व प्रभाव (परिणाम) को देखकर क्षमा का प्रयोग किया जाता है। न जानने वाले, क्षमा का ठीक प्रकार उपयोग न करने वाले, क्षमा का प्रयोग करके इष्ट नहीं अनिष्ट कर देते हैं। इससे अपनी, परिवार की, राष्ट्र की, समाज की, बहुत बड़ी हानि होती है। उदाहरण देखना है तो परिवार के बच्चों को देख सकते हैं। माता–पिता अपने बच्चों के द्वारा किये जाने वाले कुकृत्यों को, कुटेवों को, अधर्मयुक्त व्यवहार को, सामाजिक, राष्ट्रीय हानि करने वाले अत्यंत जघन्य कर्मों को सहन करते हैं। वे उनके प्रति धैर्य धारण करते हैं। उनके कुटेवों का प्रतिकार नहीं करते हैं, उनकी प्रताड़ना नहीं करते हैं, उनको दंड नहीं देते हैं, उनको शिक्षा नहीं देते हैं। वो उस समय यह विचार करते हैं कि हम क्षमा कर रहे हैं। यही आचरण अनिष्ट का कारण बन जाता है।

क्षमा कब करें, किस विषय पर करें, किस स्तर तक करें, किसके प्रति करें ? ये विषय को (समस्या की स्थिति को) देखकर, व्यक्ति को देखकर, घटना को देखकर पूरा पता लगाया जा सकता है। हर व्यक्ति के प्रति, कार्य के प्रति, हर विषय के प्रति, हर स्तर के प्रति, क्षमा नहीं की जाती है।

भूमिका–लाड़ प्यार से पुत्र व शिष्य की अवनति और ताड़ना से उन्नति होती है। अतः पुत्र और शिष्य को दंड देना चाहिये। बिना दंड के संसार में जंगलराज आ जायेगा। यह दंड ही है, जो उद्दण्ड प्रजा को नियम के अनुसार चलने वाला बनाता है। गुरु की ताड़ना से अच्छी चीज कोई नहीं। आचार्यवर कहते हैं :–

(48) विद्या अध्ययन में की गई भूल क्षमा नहीं की जाती है।

स्थूल रूप से हम यह कहेंगे कि–जो छोटी–छोटी घटनायें हमारे सामने आती हैं, जैसे– किसी ने यह किया, किसी ने वह किया और व्यक्ति उसे

सहन नहीं करता है। ये बड़ा हानिकारक है। लेकिन जिस व्यक्ति को सीखना है, जिसको सिखाना है, जहाँ शिक्षण–प्रशिक्षण चलता है, जहाँ अध्ययन–अध्यापन चलता है, वहाँ पर ये क्षमा की भावना नहीं चलती है। वहाँ शिक्षण करने के दृष्टिकोण से दंड दिया जाता है। वहां गलती का प्रायश्चित कराया जाता है, प्रताड़ना की जाती है ताकि सुधार हो और इस प्रकार की भूलें दोबारा से न हों।

भूमिका :–यद्यपि असमर्थ मनुष्य की क्षमा शोभा तो नहीं देती लेकिन जिसने उसे चोट पहुँचायी है, वह उससे अधिक प्रबल होने से उसका प्रतिरोध करेंगे तो अपना ही नुकसान होगा। इसलिए मजबूरन उसे क्षमा करना पड़ता है। वास्तव में कौन क्षमा कर सकता है ? आचार्यवर कहते हैं :–

(49) सामर्थ्यवान ही क्षमा कर सकता है।

क्षमा करने के लिये एक और गुण की अपेक्षा होती है। वह है– सामर्थ्य। सामर्थ्यवान व्यक्ति ही क्षमा प्रदान कर सकता है। जिसको सहन करने की क्षमता न हो और क्षमा कर तो दिया, लेकिन क्षमा करने के उपरांत भी उसके मन में वो समस्या उत्पन्न होती है, उससे वो जलता है, दुःखी होता है और उससे क्षुब्ध होता है। उसका क्षमा करना अनुपयुक्त हो जाता है। ***क्षमा उसको करना चाहिये, जिसका सामर्थ्य हो अथवा अपना सामर्थ्य बनायें।*** सामर्थ्य रहित होकर के यदि क्षमा करेगा, तो क्षमा करने का प्रयोजन उसको प्राप्त नहीं होगा। क्षमा करने के उपरांत भी व्यक्ति जलता रहेगा, दुःखी होता रहेगा, प्रताड़ित रहेगा, आंदोलित रहेगा, क्षुब्ध रहेगा, दौर्मनस्य की स्थिति उसके मन में बनी रहेगी। इसलिए अपना सामर्थ्य बनायें।

यदि क्षमा करने का सामर्थ्य नहीं है, ज्ञान विज्ञान नहीं है, धैर्य नहीं है, सहनशक्ति नहीं है तो व्यक्ति को धैर्य धारण करना चाहिये। यद्यपि क्षमा करने से अनेक बार धैर्य की मात्रा बढ़ती है, सहन शक्ति बढ़ती है, आत्मिक बल बढ़ता है। ये प्रयोग किया जाता है, ये भी कारण बनता है इन चीजों का। लेकिन ***अनेक बार क्षमा कर देने के उपरांत भी (वाणी व शरीर से कोई प्रतिशोध न करने पर भी) व्यक्ति अंदर से शांत नहीं होता है, निश्चिंत नहीं होता है। मन में प्रतिशोध के, क्षोभ के संस्कार बने रहते हैं, उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिये क्षमा करने वाले को अपने अन्दर धैर्य, सहनशक्ति, ज्ञान–विज्ञान और सामर्थ्य को बढ़ाना चाहिये।***

क्षमा का विषय बहुत गंभीर है। क्षमा जहाँ लाभकारी होती है, वहाँ हानिकारक भी होती है। कब, कहाँ, किस विषय में, किस व्यक्ति के साथ, कितनी मात्रा में क्षमा करनी चाहिये, ये बहुत गंभीर विषय है। विशेषकर जिन विषयों में सामाजिक व राष्ट्रीय परिस्थितियाँ विशेष उत्पन्न होती हैं, वहाँ तो बहुत गंभीर बनता है। लेकिन जो व्यक्तिगत कार्य होते हैं, जहाँ थोड़ी बहुत हानि होती है, वहाँ व्यक्ति को धैर्य धारण करके क्षमा करना चाहिये। वहां इस प्रवृत्ति को बनाना चाहिये, गंभीर रहना चाहिये, प्रतिशोध की भावना उत्पन्न नहीं करनी चाहिये। ये बहुत बड़ा गुण है।

भूमिका– आध्यात्मिक समस्या कैसे पैदा होती है, इस प्रक्रिया को आचार्यवर बता रहे हैं:–

(50) इच्छा का आग्रह समस्यायें पैदा करता है।

आत्मा का संबंध बुद्धि (समझ) से होता है। बुद्धि का संबंध अहंकार (मैं–पन) से होता है। अहंकार का संबंध मन से होता है। मन का संबंध ज्ञान–इन्द्रियों से होता है। ज्ञान–इन्द्रियों का संबंध इन्द्रियों के बाहरी आँख कान आदि गोलकों से होता है। आँख आदि गोलकों का संबंध इन्द्रियों से होकर के बाहरी विषयों से होता है। ***विषय–इन्द्रियों के पास में आते हैं तो विषयों के साथ इन्द्रियों के संपर्क से बाहरी विषयों का ज्ञान मन के माध्यम से होते ही व्यक्ति के मन के अंदर उस विषय से सम्बन्धित कामनायें उत्पन्न होती हैं।*** ज्यों हि तृष्णा उत्पन्न होती है, मनोरथ उत्पन्न होता है, चाह उत्पन्न होती है, त्यों हि व्यक्ति उसको प्राप्त करने के लिये प्रयास करता है। व्यक्ति उसके विषय में खोज करता है। उससे सन्निकटता प्राप्त करने की इच्छा करता है कि– ये मुझे मिले। जब चीज उस व्यक्ति को मिल जाती है तो फिर उसको भोगने की इच्छा होती है।

प्रत्येक इच्छित वस्तु मिल जाए, उसी मूल्य में मिल जाए, उतनी ही मात्रा में मिल जाए, जैसी चाही, वैसी मिल जाये, उसी स्तर की मिल जाये, उतने ही काल में मिल जाये, उसी सुविधा से मिल जाये, ऐसा होना संभव नहीं है। किसी वस्तु को लेने से सम्बन्धित इच्छा उत्पन्न होती है, होती रहती है। वह जिस–जिस वस्तु को देखेगा, जो–जो वस्तु उसे लाभकारी, सुखदायी प्रतीत होगी, उसकी प्राप्ति की कामना मन में उत्पन्न होगी। इतना ही नहीं, उस वस्तु से सम्बन्धित उसकी इच्छा अधिकाधिक बढ़ती जायेगी। वह वस्तु और

मिले, अधिक मात्रा में मिले, और उत्कृष्ट मिले, सस्ती मिले, शीघ्र मिले, सरलता से मिले, अनायास मिले, मिलती रहे, मिलने में कोई व्यवधान न हो, ऐसी उस विषय–वस्तु से सम्बन्धित उसकी इच्छा बनी रहती है। बस, यहीं से समस्या का होना शुरू हो जाता है।

सबसे बड़ी समस्या जो दुनियां में आज प्रत्येक विषय में है, वह यह है कि मनोवांछित वस्तु, मनोवांछित व्यक्ति, मनोवांछित स्थान, मनोवांछित क्रिया, मनोवांछित उद्देश्य और मनोवांछित साधन व्यक्ति को उपलब्ध नहीं होते हैं। ये संभव नहीं कि सबको ये उतनी ही मात्रा में, उसी स्तर के, उसी मूल्य पर, उसी समय में, उतनी ही सुविधापूर्वक, साधनपूर्वक प्राप्त हो जायें, जैसे कि पहले हो चुके थे, या दूसरे को मिल चुके हैं। ऐसा न होने पर व्यक्ति व्यथित होता है। ये ही तो समस्या का मूल कारण है।

भूमिका–सांसारिक इच्छा से अतृप्ति आती है, दुःख आता है, चिंता पैदा होती है, भय आता है, बंधन में बंधता है, विवेक नष्ट होता है, बुद्धि धोखा खाती है, नरक मिलता है और व्यक्ति ईश्वर से कटता है। ऐसा कैसे होता है, आचार्यवर बता रहें हैं किः–

(51) इच्छा का विघात समस्या पैदा करता है।

व्यक्ति के सामने समस्यायें कैसे पैदा होती हैं ? यदि हम दार्शनिक दृष्टिकोण से कहें, तो भोक्ता और भोग्य का सम्बन्ध ही समस्या उपजने का कारण है। जब जीवात्मा स्वयं को सुख का भोक्ता मानता है और विषयों को भोग्य मानता है तो समस्या उत्पन्न होती है। ***समस्याओं का मूल कारण है – भोगों को भोगने की इच्छाओं का विघात (पूरा न होना)। इस विषय में निश्चित नियम है कि – इच्छाओं का विघात जरूर होगा। कोई भी व्यक्ति इच्छाओं के विघात से रहित हो ही नहीं सकता। न पहले हुआ है, और न आगे होगा। जब इच्छा के विघात से रहित कोई हो ही नहीं सकता तो फिर समस्याओं का एक ही समाधान है कि इच्छाओं का नाश कर दिया जाये।***

यहाँ प्रश्न उठता है कि जब इच्छाओं का नाश करेंगे तो व्यक्ति काम कैसे करेगा। अतः यहाँ पर ये समझना चाहिये कि ***इच्छाओं के नाश का मतलब है– फल से रहित, आशाओं से रहित होना।*** इसी बात को सांख्यदर्शन में कहा है कि '' निराशः सुखी पिंगलावत्''। पिंगला नामक स्त्री

दूर देश में गये अपने प्रियतम को बार–बार स्मरण करके दु:खी होती थी। अब तक नहीं आया, कब आयेगा, इतने दिन हो गये, इतने सप्ताह, मास, साल हो गये, इस तरह का विचार करके दु:खी होती रहती थी। उसे किसी व्यक्ति ने आकर उपदेश दिया कि क्यों तू दु:खी हो रही है। क्या तेरे इस प्रकार से दु:खी होने पर वह जल्दी आ जायेगा, क्या उसको खबर मिलेगी, क्या उसको प्रतीति होगी कि तू दु:खी है, तू उसको बुला रही है। तू तो विरह के कारण दु:खी है, तू अपने स्वयं के अज्ञान से दु:खी है। इस प्रकार की कामना मत कर, इस प्रकार की इच्छा मत कर।

जिनके पति पाँच बजे कार्यालय, फैक्ट्री या ऑफिस समाप्त होते ही घर आ जाते हैं, कल्पना कीजिये कि वे उतने समय पर घर नहीं आए। पाँच की जगह छह बज जाते हैं। छह बजते ही पत्नी को चिंता शुरू हो जाती है कि अब तक क्यों नहीं आए। मातायें, पत्नियाँ, बच्चे, भाई, बहनें कोई भी ले लीजिये, वे निश्चित समय पर नहीं आते हैं तो घर के लोग चिंता शुरू कर देते हैं। दस, पन्द्रह मिनट प्रतीक्षा करेंगे, आधा घंटा प्रतीक्षा करेंगे, फिर ऑफिस में फोन करेंगे कि वे चले कि नहीं चले। वहाँ नहीं हैं तो वे जिसके साथ आते हैं उसके घर में फोन कर पूछेंगे कि आपके पतिदेव या बालक आया कि नहीं आया। हमारे पति तो अब तक घर नहीं आए हैं। इसके बाद उसके मित्र साथियों के यहाँ फोन करेंगे या जहाँ वो जाता है, किसी कार्यालय में, किसी पार्टी या क्लब में वहाँ पर फोन करेंगे। घंटे–डेढ़ घंटे तक यही कार्यक्रम चलता रहेगा। फिर दो–तीन घंटे के बाद हाय–तौबा मच जाती है। सब जगह ये स्थिति है। ये स्थिति क्यों बनती है।

कोई व्यक्ति जो बाहर गया है, वो चिंता करने से तो आयेगा नहीं। ***चिंतन करना और चिंता करना अलग–अलग चीज है। चिंतन में कर्त्तव्य की भावना है, उत्तरदायित्व को निर्वहन करने की भावना है, गवेषणा (खोजबीन) करने की भावना है। चिंता में तो अविवेक है, तमोगुणी स्थिति है, मोह है। हमें चिंता नहीं करनी चाहिये।*** इस प्रकार से जो इच्छाओं का विघात है, यह प्राय: व्यक्ति के मन के अंदर समस्याएँ पैदा करता है। इच्छाओं का विघात आध्यात्मिक क्षेत्र में भी होता है। हम जैसा चाहते हैं, वैसा कार्य नहीं होता है। हमने चाहा कि आज मैं इतने घंटे अध्ययन करूँगा, इतने घंटे विश्राम करूँगा, इतने घंटे निदिध्यासन, आत्मचिंतन करूँगा लेकिन वो नहीं होता है। उपासना के विषय में भी ऐसा ही है। इस देश के अंदर

आध्यात्मिक क्षेत्र में लाखों व्यक्ति अपनी उपासना को लेकर समस्या से ग्रस्त हैं और यह सोचकर दुःखी रहते हैं कि मैं एक घंटे उपासना में समय लगाता हूँ, डेढ़ घंटे लगाता हूँ, बैठता भी हूँ, जप भी करता हूँ, प्राणायाम भी करता हूँ, मंत्रों का उच्चारण भी करता हूँ, लेकिन फिर भी मेरा मन रुकता नहीं है। इसी प्रकार हिंसा आदि वितर्क मन में उत्पन्न होते हैं। मन के अन्दर द्वेष उत्पन्न होता है। इस बात को लेकर व्यक्ति दुःखी रहता है। यह आध्यात्मिक क्षेत्र है।

भूमिका—कर्म करें और अब अगर फल की इच्छा करें अथवा न करें, तो भी कर्म का फल तो मिलेगा ही। फल की मात्रा अलबत्ता अपेक्षा से कम या ज्यादा हो सकती है। जब आसक्ति का अभाव होता है तो चित्त कर्म के बंधनों से मुक्त होता है। इससे कहीं भी भय, चिन्ता और दुःख नहीं रहता है। इस कारण कर्म करते हुए फल की इच्छा छोड़ने वाले को कई गुना फल मिलता है। आचार्यवर निर्देश दे रहे हैं कि:—

(52) कर्म की इच्छा रखो, मगर फल की इच्छा नहीं।

इस समस्या का समाधान है—आशाओं से रहित होकर अपने जीवन का निर्वहन करना। इच्छाओं का विघात होना ही समस्याओं का एक बड़ा कारण है। यहां प्रश्न उठता है कि बिना कामना के तो क्रिया होगी ही नहीं। और दूसरी तरफ कहा है कि कामना न करो। इसका उत्तर है कि— यहाँ सकामता या निष्कामता का भेद है।

मन में इच्छा तो करें, लेकिन फल की कामना न करें। काम करना है, यह मेरा कर्त्तव्य है। ईश्वर ने इसे करने की आज्ञा दी है। ईश्वर की शक्ति, ज्ञान—विज्ञान, बल, साधन, सामर्थ्य और प्रेरणा से मैं कार्य कर रहा हूँ। फल क्या होगा, इसके विषय में कोई चिंता नहीं है। मैं अपनी पूरी शक्ति, बल, ज्ञान—विज्ञान, सामर्थ्य, इच्छा, पुरुषार्थ, त्याग, तपस्या के साथ श्रेष्ठतम कर्म करने का प्रयास करूँगा। मुझे फल मिले, न मिले, यह आवश्यक नहीं। अधिकांश समस्याएँ इन फलों को लेकर होती है।

यद्यपि हो सकता है आपकी इतनी कामनायें न हों। लेकिन जिसके सर के ऊपर दायित्व अधिक होता है, और दायित्वों का निर्वहन नहीं होता है, जिससे ***इच्छाओं का विघात होता है तो ऐसा व्यक्ति फिर दुःखी होता***

है। दुःख से वाणी में उत्तजना आती है, कठोरता आती है। इच्छाओं का विघात होने पर, व्यवधान किये जाने पर, बाधाएँ उपस्थित किये जाने पर क्रोध की स्थिति आती है।

इसका सबसे बड़ा समाधान ये मान लेना है कि यह आवश्यक नहीं कि हम जैसा चाहते हैं, उसी प्रकार का कार्य हो ही जायेगा। हमारे संस्कार, हमारी वासनाएँ ऐसी हैं कि हम चाहते हैं कि हमने जो कहा है, उसकी पूर्ति हो जाये। कार्य को करने का तो प्रयास करना चाहिये। कार्य आज हो, इस समय हो, अभी हो, ऐसी भावना अवश्य बनानी चाहिये। लेकिन इसके साथ में आगे ये विचार भी करना चाहिये कि मैं इस कार्य को आज कर रहा हूँ, अभी कर रहा हूँ, इसी समय कर रहा हूँ, पूरी शक्ति के साथ कर रहा हूँ, लेकिन फिर भी मुझे इस कार्य में असफलता मिल सकती है।

मैं जो कार्य विद्यालय में करता हूँ, पूरी शक्तियों और बल के साथ करता हूँ, ब्रह्मचारियों को भी साथ में जोड़ देता हूँ। इतना होने पर भी कुछ कार्य ऐसे होते हैं, वहाँ व्यवधान आ ही जाता है। उसमें दुःखी नहीं होता हूँ। मन में द्वेष की भावना उत्पन्न नहीं करता हूँ।

झूठे प्रत्यारोप किये जाने पर विश्वासघात, छल–कपट आदि किये जाने पर, बाधायें उपस्थित होने पर या अन्य–अन्य अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होने पर जो इच्छा का विघात होता है, उस इच्छा के विघात से व्यक्ति दुःखी न हो, कुपित न हो। मन में वितर्क न उठाये। क्रोध की भावना न आये, द्वेष की भावना न आये । बस इसी का नाम है – दमन।

भूमिकाः–कहते हैं–मन जीता तो जग जीता। एक साधे सब सधे। जब तक मन को नहीं जीता जाता, तब तक मनुष्य इन्द्रियों का गुलाम बना रहता है। स्वच्छन्द इन्द्रियाँ मन को अशांत करती हैं, बुद्धि को अस्थिर करती हैं और दुःख देती हैं। आचार्यवर कहते हैंः–

(53) मन को साधने पर सब सध जाता है।

बहुत से ड्राइवर हैं, जो गाड़ियाँ बहुत अच्छे से चलाते हैं। इसी तरह आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सबसे बढ़िया चालक वह है, जो अपने मन रूपी गाड़ी को ठीक प्रकार से चलाता है। ***जिनको मन को चलाना आ गया, उसे इन्द्रियों को चलाने की आवश्यकता नहीं है।*** ऋषि लोग कहते हैं कि एक–एक कर इन्द्रियों के विषयों के नियंत्रण के ऊपर जाने की जरूरत

नहीं है कि मैं रूप को न देखूँ, शब्द की ओर न जाऊँ, गंध की ओर न जाऊँ। एक मन को पकड़ लो। एक–एक इलेक्ट्रिक बल्ब को फोड़ने या बंद करने की जरूरत नहीं है। फ्यूज को हटा दें, स्विच को हटा दें, क्या हो जायेगा, सब बंद हो जायेगा। ऐसे ही यदि रूप के विषय में ध्यान जा रहा है, रस की ओर जा रहा है, गंध की ओर जा रहा है, या अन्य संस्कारों और स्मृतियों की ओर जा रहा है, अगर एक मन के ऊपर नियंत्रण कर लेते हैं तो सारे पर नियन्त्रण हो जायेगा। सकामतायुक्त जो इच्छायें उत्पन्न होती हैं, उन इच्छाओं का विघात करना चाहिये।

ये बात निश्चित है कि आध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान–विज्ञान प्राप्त करके व्यक्ति अपनी अधिकांश समस्याओं को दबा सकता है, उनको सहन कर सकता है, उनका समाधान कर सकता है और प्रसन्नचित्त रह सकता है। यह देखना है तो ऋषियों के जीवन में, योगियों के जीवन में, विद्वानों के जीवन में आपको देखने को मिलेगा। ये व्यक्ति कभी भी, कहीं भी किसी भी विषय में किंचित मात्र भी दुःखी नहीं होते। इनके सामने भी समस्यायें आती हैं, और बहुत अधिक आती हैं।

भूमिका :–आचार्यवर यह रहस्य बता रहे हैं कि जितना बड़ा काम हाथ में लोगे, उतनी ज्यादा बाधाएँ सामने आयेंगी :–

(54) काम बढ़ा तो समस्या बढ़ी।

ध्यान देने की बात ये है कि सामान्य व्यक्ति के सामने समस्याएँ कम आती हैं। विद्वानों के सामने, प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सामने, धनिक व्यक्तियों के सामने, रूपवान व्यक्तियों के सामने, बलवान व्यक्तियों के सामने, ख्याति प्राप्त व्यक्तियों के सामने समस्याएँ अधिक आती हैं। मैं अपने विषय में बताऊँ, जब आज से दस वर्ष पहले मैं केवल पढ़ता–पढ़ाता था तो समस्याएँ दो, चार, पाँच आती थीं। आज जब काम बढ़ा दिया तो समस्याएँ ज्यादा हो गई। प्रकाशन का काम, आश्रम का काम, विद्यालय का काम, शिविरों का काम, प्रचार का काम, पढ़ाने का काम, अतिथियों का काम और भवन निर्माण करने का काम मेरे दायित्व हैं। काम बढ़ने से समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। यह अलग बात है कि अधिक धन, बल, सामर्थ्य के कारण समस्या का समाधान सरलता और जल्दी से हो जाता है।

जब किसी व्यक्ति को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, धन प्राप्त होता है, ख्याति प्राप्त होती है, लोगों में प्रसिद्धि होती है तो उससे स्वार्थी व्यक्ति, अज्ञानी

व्यक्ति द्वेष करते हैं, उसका विरोध करते हैं, उसका खण्डन करते हैं, और उसके लिए समस्याएँ पैदा करते हैं। तात्पर्य यह है कि– ***जो व्यक्ति जितना प्रसिद्ध होता है, जितना अधिक धनवान, बलवान, रूपवान, विद्वान या ख्यातिवान होता है, उस व्यक्ति के सामने उतनी अधिक समस्याएँ आती हैं। योगियों के समक्ष अधिक समस्याएँ रहती हैं, लेकिन वे उन समस्याओं का तत्काल समाधान निकाल लेते हैं, तत्काल उनको सहन कर लेते हैं, तत्काल उनको टाल देते हैं।*** उसका कोई प्रभाव अपने जीवन पर नहीं आने देते हैं। इसलिये आध्यात्मिक व्यक्ति को चाहिये, धार्मिक व्यक्ति को चाहिये कि वह समस्याओं का समाधान करने की योग्यता प्राप्त करे।

वही व्यक्ति सफल है, जो अपने जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान कर लेता है। आपने हॉकी का खेल देखा होगा। उसके अंदर जब कोई खिलाड़ी गेंद को दूसरे के पाले में गोल करता है, उस समय उसके सामने ग्यारह व्यक्ति खड़े होते हैं। वो ग्यारह व्यक्ति समस्या हैं उसके सामने। वह गेंद को दायें–बायें, आगे–पीछे करते–करते गोल कर ही लेता है। भारतीय हॉकी टीम में ध्यानचंद थे। वे बहुत ही प्रसिद्ध थे। उनके विषय में लोगों को यह भ्रांति हुई कि ये व्यक्ति अपनी हॉकी के अंदर चुंबक लगाकर लाता है और बहुत बार इस बात का परीक्षण भी किया गया। ध्यानचंद का इतना अभ्यास था कि वे गेंद को अपनी हॉकी से हटने नहीं देते थे। वे गेंद को बस सरकाते–सरकाते थे मगर बहुत कम किक मारते थे। वे गेंद को इधर–उधर, इधर–उधर करते हुए अकेले ही अपने पाले से लेकर और सामने वाले गोलकीपर तक खींचते हुये ले जाकर गोल कर दिया करते थे। इस कारण लोगों को संशय हुआ करता था कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसके बॉल के अंदर लोहा लगा हो और हॉकी के अंदर किसी प्रकार का चुंबक लगा हो। ये उदाहरण मात्र दिया है।

ऐसे हमारे जीवन में पदे–पदे, भोजन की समस्या, सर्दी की समस्या, कपड़े की समस्या, पुस्तकों की समस्या, विरोध की समस्या, मित्रों की समस्या और मकान की समस्या आती रहती है।

विद्यार्थियों को कमरे में समस्यायें आती होंगी। जैसे एक पढ़ रहा है, तो दूसरा खर्राटे भरी नींद ले रहा है। एक शोर कर रहा है, तो दूसरा तेज आवाज में मंत्र उच्चारण कर रहा है। ये समस्याएँ तो आती हैं। साथी कठोर बोलता है, आलसी है, स्वार्थी है। इससे अनेक प्रकार की समस्यायें उत्पन्न

होती हैं। उन समस्त समस्याओं का यदि व्यक्ति समाधान निकाल ले अथवा उनको सहन कर ले, तो वह अपने लक्ष्य के ऊपर आरूढ़ हो सकता है।

आप देखेंगे कि एक कक्षा के अंदर, एक घर के अंदर दस सदस्य हैं, और उनमें से एक व्यक्ति तूफान मचाता है, विरोध करता है, उद्दंडी है, स्वच्छन्द है, उल्टे–सीधे काम करता है। दूसरा एक व्यक्ति वहां ऐसा है जिसको कोई परवाह नहीं है। वह अपनी मस्ती में मस्त रहता है। करने दो किसी को जो करना है, ऐसी भावना से वह व्यक्ति सोचता है। इसके विपरीत, एक व्यक्ति अपने घर के उद्दंडी व्यक्ति को देख–देखकर दु:खी रहता है। वह उस समस्या का समाधान नहीं कर पाता है।

हम यह स्थिति देखते हैं घरों के अंदर। व्यक्ति को उन समस्याओं का समाधान तत्काल कर लेना चाहिये, उसको सहन कर लेना चाहिये अथवा उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिये, उन्हें टाल देना चहिये।

भूमिका–चोर को सरकार दण्ड देती है। रंगे हाथ पकड़ा चोर भीड़ की पंचलत्तियाँ खाता है। उसका अपमान किया जाता है। वह अविश्वसनीय बनता है। लोग उससे दूर भागते हैं। उसको कोई कुछ देना पसंद नहीं करता है। चोरी का माल खा–खा कर वह पक्का कामचोर बन जाता है। इससे उसकी अयोग्यता बढ़ती जाती है। चोर जानता है कि – मैं गलत काम कर रहा हूँ, इस कारण से वह हीन भावना से ग्रस्त रहता है। चोर चुराये गये धन का प्रयोग करता हुआ भयभीत रहता है इसलिए वह चुराये धन से आनंद नहीं उठा पाता। मुफ्त का धन अधर्म के कार्यों में और बड़ी शीघ्रता से खर्च होकर नष्ट हो जाता है। चोर ईश्वर से दूर होता जाता है और बाद में उसे ईश्वरीय दण्ड भी भोगना पड़ता है। आचार्यवर चोरी के सूक्ष्म स्वरूप को स्पष्ट कर रहे हैं :–

(55) स्तेय समस्या पैदा करता है।

समस्याओं का एक कारण है– चोरी। चोरी क्या है ? चोरी के स्वरूप को व्यक्ति ठीक से नहीं समझता है। इसलिए जब किसी से पूछते हैं कि क्या आप चोरी करते हैं तो वह कहता है कि मैं बिल्कुल चोरी नहीं करता। आप श्रोताओं में से किसी एक से मैं पूछ लूँ तो आपमें से शायद ही कोई ऐसा होगा जो बोले कि हाँ, मैं चोरी करता हूँ। लेकिन दार्शनिक और आध्यात्मिक

दृष्टिकोण से जब स्तेय (चोरी) का संबंध स्पृहा के साथ जोड़ा जाता है तो प्रायः व्यक्ति चोर मिलता है।

स्पृहा का अर्थ है – ***अनधिकृत वस्तुओं को, जो कि हमारी नहीं हैं, जिनके हम स्वामी नहीं हैं, जिन पर हमारा अधिकार नहीं है, उन वस्तुओं की प्राप्ति की मन में इच्छा करना, ये है स्पृहा।*** ये अनिष्ट (अशुचि) का एक भाग है। इतनी गहराई से कौन सोचे ? व्यक्ति जब ये सोचता ही नहीं है, तो इसका पालन क्या करेगा।

याद रखें कि यदि हम किसी अन्य व्यक्ति की संचिका (नोटबुक) को उससे बिना पूछे ले लेते हैं, लेने की बात दूर रही लेने के लिए उसको छू लेते हैं अथवा अपने मन में लेने की इच्छा करते हैं तो यह 'चोरी' के अंतर्गत आ जाता है। एक घटना है–मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था। मैं किसी पीरियड में आया नहीं था तो मैंने कक्षा में एक विद्यार्थी की संचिका ली। वह विद्यार्थी कहीं बाहर गया था और उस दिन जो पढ़ाया गया था, उसकी संचिका से मैं वह पढ़ने लगा। फिर जब मैं उसकी संचिका वापस रखने जा रहा था तो उस विद्यार्थी ने देख लिया। उसने कहा– मुझसे पूछे बिना मेरी संचिका क्यों ली? उसने आरोप लगाया कि इसमें मेरा सौ का नोट रखा था, वह कहाँ गया। सुनकर मुझे झटका लगा। अरे, इतना बड़ा आक्षेप लगा दिया कि मैंने चोरी की। उस दिन के बाद से आजतक मैं किसी भी व्यक्ति की संचिका या पुस्तक बिना पूछे नहीं लेता।

सीख यही है कि– कोई भी व्यक्ति कहीं पर भी आरोप लगा सकता है। बाद में उस विद्यार्थी ने मुझसे कह दिया कि मैंने तो मजाक में कह दिया था।

कभी भी किसी की संचिका को, पेन को, वस्त्र को, पुस्तक को, पदार्थों को बिना पूछे न लें। यदि आपको आवश्यकता पड़ती है तो एक दूसरे से पहले से यह अनुबंध कर लें कि आवश्यकता पड़ने पर मैं आपकी पुस्तक या और अन्य कोई वस्तु ले सकता हूँ, और यदि वह कह देता है कि– हाँ आप ले सकते हैं, तो उसकी वस्तु पूछे बिना लेने में मन में इतना भय नहीं होता है। फिर भी अपनी आदत को ठीक बनाये रखने के लिये जहाँ तक हो सके, बिना पूछे दूसरों की वस्तु को न लेने की कोशिश करनी चाहिये। पहले न लेने का विचार उठाएँ। जहां दूसरे की वस्तु लेना अत्यंत आवश्यक हो, न लेने से हानि होगी या फिर कोई जरूरी सामाजिक कार्य हो, तो उस समय लेने के उपरांत उसको सूचना दे दें कि आज मैंने

आपकी फलानी वस्तु को अमुक समय में लिया था। ये काम किया और मैंने उसे वापस रख दिया है।

अनेक बार ऐसा होता है कि हम लोग इस प्रकार की त्रुटियां कर देते हैं। ये स्तेय की त्रुटि के अन्तर्गत आती हैं। कुछ व्यक्ति क्या करते हैं– मुझे कार्य करना है, ऐसा कहकर दूसरे की वस्तु ले आते हैं और अपने पास में रख लेते हैं। वे दो–चार दिन बाद वह कार्य शुरू करते हैं। यह ठीक नहीं है। दो–चार दिन पहले से दूसरे की वस्तु क्यों ले आये ? जिस दिन काम करना है, उसी दिन वस्तु लानी चाहिये थी, पहले से नहीं। कुछ व्यक्ति वस्तु ले आते हैं, अपना काम भी कर लेते हैं, मगर तीन–चार दिन बाद उसे वापस करते हैं। काम हो गया तो वस्तु उसी समय वापस दे आनी चाहिये।

हम स्वयं अनुभव करेंगे। जहाँ से हम आप गिलास उठाते हैं, वहाँ पर वापस गिलास नहीं रखते हैं। ***कोई पात्र, कोई वस्तु, कुर्सी या फिर मेज आपने अपने प्रयोग के लिये निकाली एवं उसको अगर उसी स्थान पर आपने वापस नहीं रखा तो ये सब भी स्तेय की त्रुटि में आ जाते हैं।*** अनधिकृत रूप में वस्तुओं का प्रयोग करना, प्रयोग करने का विचार करना, प्रयोग करने के लिए औरों को कहना व योजना बनाना, ये सब स्तेय की कोटि में आते हैं।

भूमिका–आचार्यवर समस्या का एक मानसिक कारण बता रहे हैं:–

(56) स्व–स्वामी संबंध समस्या पैदा करता है।

इस विषय में विचार के लिए एक बिंदु को लेते हैं। उसका नाम है–ममत्व, स्वामित्व, वस्तुओं के प्रति अपनत्व। ये समस्याओं का एक बहुत बड़ा कारण है। अधिकांश समस्याएँ इस एक बहुत बड़े अज्ञान के कारण या मिथ्या ज्ञान के कारण से उत्पन्न होती हैं। ***जो चीज हमारी है नहीं और हमारी रहेगी नहीं, जो चीज हमें संयोग से मिली है और जिसका वियोग होना निश्चित है, उस वस्तु को अपना मानकर जब व्यक्ति चलता है तो यह स्थिति समस्याओं को उत्पन्न करती है।***

(57) स्व–स्वामी सम्बन्ध अहंकार का जनक है।

जब स्वामित्व की भावना मन में आती है तो उससे फिर अहंकार निश्चित रूप से उत्पन्न होता है। जब अहंकार उत्पन्न होता है तो व्यक्ति का विवेक

नष्ट हो जाता है। विवेक के नष्ट होने पर व्यक्ति अनर्थ कार्यों को करता है। उसका बुरा परिणाम और प्रभाव अपने पर, परिवार पर, समाज पर और राष्ट्र पर पड़ता है।

जहाँ ममत्व नहीं है, रागात्मक संबंध नहीं है, स्वामित्व नहीं है, वहाँ प्रायः समस्यायें उत्पन्न नहीं होती हैं। यह जरूर है कि जिन समस्याओं का सम्बन्ध ममत्व से नहीं है, वो उत्पन्न हो सकती हैं। लेकिन लौकिक क्षेत्र की अधिकांश समस्यायें ममत्व से उत्पन्न होती हैं। यदि लौकिक व्यक्ति थोड़ा सा आध्यात्मिक बन जाये तो समस्याएँ समाप्त हो जायेंगी।

(58) धन–सम्पत्ति के साथ स्व–स्वामी संबंध बनना झगड़े का कारण है।

आज देश के अंदर लाखों की संख्या में भाईयों के, माता–पिता के, पति–पत्नी के, भाई–बहन के झगड़े चल रहे हैं। जो एक खून वाले हैं, एक वंश वाले हैं, एक घर में रहते हैं, एक साथ खाते–पीते–रहते हैं, एक घर में पैदा हुए हैं, उनमें झगड़े लाखों की संख्या में हैं। अदालतों में धन के, जमीन के और मकानों के लाखों मुकदमे चले रहे हैं। एक कहता है – मेरा है, और दूसरा कहता है – मेरा है। एक कहता है– उस पर मेरा अधिकार है, दूसरा कहता है – मेरा अधिकार है। एक शिकायत करता है कि – सम्पत्ति में उसका भाग क्यों अधिक है, मेरा भाग क्यों कम है। इसी प्रकार धन के विषय में, कारखानों के विषय में, दुकानों के विषय में व अन्य अनेक प्रकार की संपत्तियों के विषय से सम्बन्धित मुकदमें लाखों की संख्या में चल रहे हैं।

इन मुकदमों के पीछे स्व–स्वामी संबंध कहो या वस्तुओं के प्रति ममत्व कहो या अटैचमेंट कहो, ये भावना काम किया करती है। यदि भाई अपने भाई को बड़ा मानता है तथा धन को छोटा मानता है तो वो अपने भाई के द्वारा सारा पैसा, सारी भूमि, सारा सोना–चाँदी आदि सब कुछ हड़प लेने पर भी अपने भाई के खिलाफ मुकदमा नहीं करेगा। यदि पुत्र अपने पिता की संपत्ति को उसकी संपत्ति मानता है, अपना अधिकार नहीं मानता है तो उस संपत्ति को पाने के लिए वह अपने पिता के ऊपर मुकदमा नहीं करेगा। इसी प्रकार अन्य संबंधों में समझना चाहिये।

जहाँ मैं और मेरा, वह क्यों खाये, मैं क्यों न खाऊं, वह क्यों अधिकारी बने, मैं क्यों न बनूँ, इस प्रकार की भावना आती है, वहाँ पर ही

ये झगड़े पैदा होते हैं। स्व–स्वामी संबंध समाप्त हुआ तो झगड़े समाप्त हो जाते हैं। जो व्यक्ति अपने पास में स्थित किसी वस्तु को अपना मानता ही नहीं है, उसका अधिकारी अपने आपको मानता ही नहीं है तो फिर झगड़ा किस बात का होगा? झगड़ा होता ही इस बात का है कि ये मेरा है, ये मेरी वस्तु ले रहा है, मुझसे छीन रहा है। इसमें लोभ की वृत्ति होती है। विवेकी व्यक्ति वस्तु को अपना मानता ही नहीं है, बल्कि ईश्वर की मानता है।

अपने पास मौजूद वस्तु की रक्षा करना हमारा कत्तव्य है। अच्छी प्रकार से रक्षा करने के उपरांत भी यदि कोई व्यक्ति छल से, बल से, कपट से, चोरी से, डाके से या अन्य किसी प्रकार से आपकी वस्तु छीन लेता है तो दुःखी नहीं होना चाहिये। वहाँ पर उस वस्तु को ईश्वर की मानकर छोड़ देना चाहिये। ऐसा इसलिए करना चाहिए क्योंकि ऐसा करके ही वह सुखी रह सकता है।

मैं ऐसे बीसों व्यक्तियों को जानता हूँ जिनके अपने परिवार वालों के साथ, घनिष्ठ मित्रों के साथ, संबंधियों के साथ झगड़े चल रहे हैं। वह भी कोई एक दिन से नहीं, एक मास से नहीं, एक साल से नहीं, बल्कि मुकदमा लड़ते–लड़ते बीस–पच्चीस वर्ष हो गये हैं, और वे इससे दुःखी हैं। अब इतना पानी उनके सिर के ऊपर आ गया कि उस मुकदमे को छोड़ भी नहीं सकते। कहते हैं – इतना किया है, अब जो कुछ भी हो, चलते–रहो, चलते–रहो। तात्पर्य है – ऐसा व्यक्ति भँवर से निकलना तो चाहता है, लेकिन निकल नहीं पाता है।

छोटी सी बात पर झगड़ा होता है लेकिन आवेश में आकर के स्व–स्वामी संबंध को उभारकर व्यक्ति अभिमान में आकर कुछ का कुछ कर देता है। उसका परिणाम फिर कितना ही बुरा हो, उसकी कोई परवाह नहीं रहती। अब परेशान है वह। हम जिन व्यक्तियों को देखते हैं, जानते हैं, जिनके बारे में सुना है, परिचय है, उनके मुकदमें चलते हैं। वे दुःखी हैं और अब वे कह रहे हैं, अच्छा होता कि उस समय उस धन को, उस संपत्ति को, उस भूमि को, उस मकान को, उस दौलत को हम छोड़ देते। कम से कम बीस वर्ष शांति से तो जीते रहते। आज वह संपत्ति भी नहीं मिली, उलझी भी है, और मन की शांति भी चली गई। हर समय टेंशन रहती है। हर दो–तीन महीने बाद कोर्ट में जाओ। जग हँसाई होती है, वह अलग।

(59) अपनी सरलता, विनम्रता, योगाभ्यास, विद्या, बल, आयु, सेवाभाव, निष्कामता से बना स्व–स्वामी सम्बन्ध 'अभिमान' को पैदा करता है।

ये स्व–स्वामी संबंध धन का, जमीन का, संपत्ति का, मकान का, भवन का और गहने का भी बना हुआ हो सकता है। ये स्व–स्वामी सम्बन्ध बल का भी होता है, आयु का भी होता है। लोग आयु के अभिमान में कह उठते हैं – मैं बड़ा हूँ, उसको क्या पता, अस्सी वर्ष तक बाल सफेद ऐसे ही नहीं किये मैंने धूप में। बल का भी अभिमान होता है। विद्या का भी अभिमान होता है। विद्या के साथ स्व–स्वामी संबंध, सेवक के साथ स्व–स्वामी सम्बन्ध बना होता है। इसलिए अभिमानपूर्वक व्यक्ति कहता है – मैं निष्काम भावना से इसकी सेवा करता हूँ। दूसरा और कौन करता है ? मैं चार घंटे–छह घंटे काम करता हूँ। अपना सब छोड़ दिया है मैंने। केवल समाज और राष्ट्र के लिए मैं तन, मन, धन लगा रहा हूँ। योगाभ्यास का अभिमान भी स्व–स्वामी संबंध के कारण है। जैसे – मैं इतने घंटे उपासना में बैठता हूँ, जप करता हूँ, ध्यान लगाता हूँ।

भूमिका–मुझमें कोई अभिमान नहीं है, इस बात का भी अभिमान होता है –

(60) निरभिमानता का भी अभिमान होता है।

सभी गुणों और वस्तुओं का अभिमान होता है। सामान्य व्यक्ति इस बात को समझ नहीं पाता है। ***दुनिया को ये दिखाने का प्रयास करना कि मैं निरभिमानी हूँ, सरल हूँ, विनम्र हूँ, सेवाभावी हूँ। इस तरह के अभिमान मन में होते हैं, बाहर नहीं।*** अभिमान का प्रागटय कार्य में होता है, वाणी के द्वारा होता है और मन में होता है। सूक्ष्म स्तर का जो अभिमान है और सूक्ष्म विषयों का जो अभिमान है, वह शरीर से प्रकट नहीं होता। व्यक्ति शरीर से ऐसा कार्य करेगा कि लोगों को उसके व्यवहार में निरभिमानता दिखे। वाणी से भी वह निरभिमानता प्रकट करेगा, लेकिन मन के अंदर निरभिमानता का भी अभिमान बना रहता है कि मैं अभिमान नहीं करता हूँ। यह बहुत सूक्ष्म विषय है। जैसे प्याज (कांदा) का एक छिलका उतारो, फिर नया छिलका तैयार है। फिर उतारो, फिर नया छिलका तैयार है। इसी तरह से जैसे–जैसे व्यक्ति इसमें आगे बढ़ता है, ज्ञान की नयी–नयी परतें खुलती जाती हैं।

(61) अभिमान की जड़ें बहुत गहरी होती हैं।

हमें दुनिया पता नहीं क्या मानती है। कोई हमें ऋषि कहता है, कोई हमें त्यागी, कोई विद्वान, कोई योगी, तो कोई तपस्वी कहता है। लेकिन ***जब हम सूक्ष्मता से अपने अंदर झांकते हैं अथवा ऋषियों से अपनी तुलना करते हैं, तो अपने अन्दर बैठे अभिमान की प्रतीति होती है। अपने आलस्य, प्रमाद की प्रतीति होती है।*** वस्तुओं से अपने द्वारा बनाये गये स्व–स्वामी संबंध की प्रतीति होती है। स्थूल रूप से प्रकट में न आये, वाणी से प्रकट में न आये, मन में भी हर समय उभार न रहे, लेकिन सूक्ष्मता से जब अंदर झांककर देखते हैं तो हमको इन्हीं के अंश मिलते हैं। कहीं न कहीं, किसी न किसी विषय में यह अभिमान उभरता है। अहंकार उभरता है, स्व–स्वामी सम्बन्ध उभरता है। इसको दबाना पड़ता है। यह बहुत सूक्ष्म विषय है। लेकिन ***जब व्यक्ति सारी वस्तुओं को, समस्त ज्ञान–विज्ञान को, अवसर को, बल को, रूप–रंग को यानि जीवात्मा के अतिरिक्त जितने भी जड़चेतन के सान्निध्य के कारण उनकी उपलब्धि है, संयोग है, उन सबका स्वामी ईश्वर को मानता है तो स्व–स्वामी सम्बन्ध दूर होता है।*** इससे अधिकार की भावना दूर होती है, और जहाँ अधिकार की भावना दूर हुई तो ज्यादातर समस्याएँ टल जाती हैं। प्रायः समस्याएँ रहती ही नहीं हैं।

(62) स्व–स्वामी सम्बन्ध से अभिमान और अभिमान से समस्याएँ पैदा होती हैं।

एक व्यक्ति का कक्षा में बैठने का स्थान जहाँ पर है, वो व्यक्ति रोजाना वहीं पर बैठता है। दूसरा व्यक्ति भूल से वहाँ बैठ गया, उसने कहा–यहाँ क्यों बैठ गये? इस प्रकार जमीन के लिए, छोटे से स्थान के लिये उसने विवाद पैदा कर दिया। जमीन से उसका स्व–स्वामी सम्बन्ध बहुत सूक्ष्मता से समझ में आता है। वस्तुतः अभिमान जो है, स्व–स्वामी सम्बन्ध के कारण होता है। और यही स्व–स्वामी संबंध समस्याओं का एक मूल कारण है।

(63) अपने अन्दर मौजूद स्व–स्वामी सम्बन्ध का निरीक्षण करो।

आप नित्य प्रति इस बात का निरीक्षण करते रहें कि हमारे अंदर वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति कितना स्व–स्वामी सम्बन्ध बना हुआ है। ये भी परीक्षण

करें कि यह सम्बन्ध प्रकट में आ जाता है या नहीं। योगाभ्यासी व्यक्ति, विवेकी व्यक्ति अपने मानसिक स्तर पर समस्त संसार को प्रलयावस्था (संसार की नश्वरता की स्थिति को मन में देखना) में पहुँचा देता है। ऐसी स्थिति बनाकर वह विशेष ज्ञान–विज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप वह अपने समस्त पदार्थों के नष्ट होने पर, चुराये जाने पर, जलाये जाने पर या उनकी कुछ भी हानि किये जाने पर दुःखी नहीं होता है।

प्रायः व्यक्ति इस विषय पर विचारता नहीं है। एक उदाहरण दे रहे हैं, कल्पना कीजिये, एक विद्यार्थी ने बहुत पुरूषार्थ करके बार–बार जबलपुर जाकर के हजारों रुपये खर्च करके, दस–पन्द्रह दिन लगाकर, बहुत गले का अभ्यास करके, स्टुडियो में अपनी आवाज की रिकार्डिंग कराई। उसकी जो गाने की सी.डी. या वीडियो कैसेट आई, उसे किसी ने चुरा ली या नष्ट कर दी या किसी ने लेकर के जला दी और राख बाहर फैंक दी। एक भी सी. डी. बाकी नहीं रहीं तो उस विद्यार्थी को बहुत दुःख होगा। ऐसी कल्पना तो व्यक्ति करता ही नहीं। इस प्रकार की कल्पना कर ही नहीं पायेगा।

हमारी संचिकाएँ (कापियाँ) हैं। आठ–दस वर्ष पहले लिखी गई कुछ संचिकाएं मेरे पास हैं। ज्ञान विज्ञान की ये संचिकाएँ मैं पहले किसी को दिखाता नहीं था। दूसरे के द्वारा माँगने पर संचिका नहीं देता था। मैंने उन संचिकाओं से स्व–स्वामी सम्बन्ध बनाया था। इसे तोड़ने का प्रयास किया तो टूट गया। इसी प्रकार लोगों के पास जो धन होता है, पुस्तकें होती है, उनके प्रति मन में बड़ा राग होता है। वे किसी को अपनी पुस्तिका या डायरी नहीं देते हैं, किसी को नहीं दिखाते हैं। उसे गुप्त रूप से संभालकर रखते हैं।

मैंने कई विद्वानों में देखा कि दूसरे विद्वानों के सामने अपना प्रवचन नहीं देते। वे सोचते हैं कि मैं दूसरों के सामने अपना प्रवचन दूँगा तो ये मेरा प्रवचन चुरा लेंगे, आगे फिर ये और अच्छा प्रवचन देंगे। इसी कारण से दूसरे विद्वानों के सामने प्रवचन करते समय वे कुछ गोल–मोल बातें बोलेंगे। ये बड़ी विचित्र बात है। इसका कारण स्व–स्वामी सम्बन्ध है। व्यक्ति सोचता है कि– मेरा ज्ञान श्रेष्ठ है, दूसरे का श्रेष्ठ नहीं है। कोई देखता है कि मान लो मैं पहले बोलूँगा और दूसरा बाद में बोलेगा तो मेरे प्रवचन का महत्त्व कम होगा। मेरा प्रवचन तो सबसे श्रेष्ठ होना चाहिये। इसलिए प्रायः व्यक्ति चाहता है कि मेरा प्रवचन अन्त में होना चाहिये।

मेरा प्रयास ऐसा होता है कि मेरा प्रवचन सबसे पहले हो ताकि प्रवचन सुनकर लोग आक्षेप व टिप्पणी करें। कोई व्यक्ति योगाभ्यास के विषय में, तपस्या के विषय में, त्याग के विषय में, ध्यान के विषय में, हर विषय में प्रवचन देता है लेकिन उस ज्ञान से उसका स्व–स्वामी सम्बन्ध हो जाता है। जहाँ स्व–स्वामी सम्बन्ध होता है, वहाँ अभिमान उभरता है। जहाँ अभिमान उभरेगा, वहाँ समस्याएँ उत्पन्न होंगी, दु:ख होगा। इसके विपरीत जहाँ स्व–स्वामी सम्बन्ध नहीं रहेगा, वहाँ निरभिमानता रहेगी। जहाँ निरभिमानता रहेगी, वहाँ ममत्व नहीं रहेगा। इस स्थिति में तो वहाँ कुछ भी चला जाये तो असर नहीं पड़ता। ये विषय बहुत गंभीर है, बहुत विचारणीय है।

जिस व्यक्ति का बौद्धिक स्तर जितना अच्छा होता है, वह उतने ही सूक्ष्म स्तर से अभिमान के विषय को पकड़ लेता है। वह गहराई में जाकर के और डुबकी लगाता है और लगाते जाता है। सामान्य व्यक्ति की बात दूसरी है। वह इस स्व–स्वामी सम्बन्ध को और फिर अभिमान को पकड़ ही नहीं पाता है। स्थूल (मोटे) रूप से पकड़ नहीं पाता है। वाचनिक रूप से पकड़ने की बात दूर रही और मन की तो कल्पना ही नहीं कर सकता अर्थात् वह जान ही नहीं पाता कि मेरे मन में अभिमान उत्पन्न होता है।

स्थूल (मोटे) रूप से शारीरिक अभिमानों को, स्व–स्वामी सम्बन्धों को तोड़ना सरल है। उसकी तुलना में वाचनिक अभिमान को तोड़ना कठिन है। मानसिक स्व–स्वामी सम्बन्ध को, अभिमान को तोड़ना बहुत कठिन है। लेकिन जो व्यक्ति इस दिशा में प्रयास करता है, इस विषय में विचार करता है, चिंतन करता है, वह इसको पकड़ते–पकड़ते आखिरकार पकड़ ही लेता है।

ये सारे विषय मानसिक ही तो हैं। विशुद्ध आध्यात्मिक व्यक्ति, ऋषि व्यक्ति, मुनि व्यक्ति, ब्राह्मण व्यक्ति के मन में किसी भी पदार्थ के प्रति स्व–स्वामी सम्बन्ध नहीं बना होता। चाहे वह करोड़ों रूपयों का स्वामी हो, करोड़ों का लेन–देन करता हो, बड़े सामाजिक कार्यों में लगा हुआ हो, मगर उसका उन चीजों के साथ स्व–स्वामी संबंध नहीं होता है। अपनी जीवन की रक्षा करना और बात है और उसके साथ में स्व–स्वामी सम्बन्ध बनाना और लोगों को यह सूक्ष्म अंतर समझ में नहीं आता है। एक योगी व्यक्ति जिसका स्व–स्वामी संबंध छूटा हुआ है, और एक लौकिक व्यक्ति जिसका स्व–स्वामी संबंध बहुत बना हुआ है, इन दोनों के अन्तर को आम व्यक्ति समझ नहीं पाता है। वह तो योगी और भोगी, इन दोनों को एक रूप में देखेगा। कारण है कि योगी

व्यक्ति, आध्यात्मिक व्यक्ति भी पदार्थों की, वस्तुओं की, धन की, सम्पत्ति की, उसी प्रकार से रक्षा करता है, उनका उसी प्रकार से उपयोग करता है, जैसा कि लौकिक व्यक्ति करता है। यह देखकर उसको भ्रम हो जाता है। ***रक्षा करना, ठीक प्रकार से उपयोग लेना, उसको बनाना एक अलग चीज है, तथा उससे स्व–स्वामी सम्बन्ध बनाना एक अलग चीज है।*** ये सारी सूक्ष्म बातें प्रयोग किये बिना समझ में नहीं आती हैं।

हम स्वामी दयानंद जी को ऋषि मानते हैं, योगी मानते हैं, आध्यात्मिक व्यक्ति मानते हैं। स्वामी दयानंद जी के जीवन में आता है। वे कहते थे – जाओ, इतने रुपये लेकर उस सेठ के पास जमा कर दो, इतना रुपया ब्याज मिलेगा। योगी व्यक्ति का पैसा इकट्ठा कर सेठ के पास में जमाकर ब्याज लेने का मतलब क्या है, यह एकदम से समझ में नहीं आता है। पुस्तकों के विषय में, पत्रिकाओं के विषय में, प्रकाशन के विषय में, पोस्टेज के विषय में, स्वामी दयानंद जी एक–एक नये पैसे का हिसाब रखते थे। जैसे हम–आप रखते हैं ठीक उसी प्रकार वे भी रखते थे, लेकिन उनमें स्व–स्वामी संबंध नहीं था। योगी थे तभी तो स्व–स्वामी संबंध नहीं था। लेकिन स्व–स्वामी संबंध न रखते हुए भी जैसे लौकिक व्यक्ति काम करते हैं वैसे ही योगी लोग, ऋषि लोग, आध्यात्मिक लोग काम करते थे। जिस समय स्वामी दयानंद जी का देहांत हुआ था उस समय उनके पास में हजारों, लाखों रूपये की संपत्ति थी। उन्होंने फिर बाद में भले ही श्रीमती परोपकारिणी सभा बनाई, वो अलग बात है। संपत्ति थी उनके पास। सेठों के पास का दिया हुआ था। वो किताब खरीदते थे, प्रिंटिंग प्रूफ देखते थे, वेदभाष्य छपाते थे, ग्राहक बनाते थे, चंदा लेते थे, रसीदें बेचते थे, टिकटें लगाते थे। हम भी यहीं काम कर रहे हैं। हम कोई नया काम नहीं कर रहे हैं। स्वामी दयानंद जी वाला काम कर रहे हैं। सब समझते हैं इसका योगाभ्यास से क्या संबंध ? टिकटें लगाओ, ये करो, वो करो, ये काटो, वो काटो। हम अति न करें कि इसी काम में लगे रहें। हमारा उद्‌देश्य सिर्फ काम में लगे रहना न हो। ये ही काम लौकिक व्यक्ति भी करता है और एक आध्यात्मिक आदमी भी करता है। हमारे कार्य, हमारी वाणी, हमारे विचार स्व–स्वामी सम्बन्धों से युक्त न हों, निष्काम भावना से युक्त हों, अटैचमेंट से रहित हों तो निश्चित रूप से निरभिमानता की भावना मन में रहेगी और समस्यायें नहीं आयेंगी। स्व–स्वामी सम्बन्ध रहा, अभिमान आया और समस्यायें पैदा हुईं।

भूमिका–अपने संकुचित विचारों और व्यवहारों का सुधार करने हेतु :–

(64) परिस्थितिवश उत्पन्न उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना चाहिए।

समस्याएँ उत्पन्न होने का एक कारण है– लिये हुये उत्तरदायित्वों को अथवा अपने ऊपर आये उत्तरदायित्वों को अथवा अपने से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार से नहीं निभाना। ***एक उत्तरदायित्व लिये जाते हैं, दूसरे दिये जाते हैं और तीसरे उत्पन्न हो जाते हैं। ये तीनों स्थितियाँ होती हैं।***

कोई व्यक्ति ये विचार करे कि मेरा कोई दायित्व नहीं है। मुझे कोई दायित्व नहीं दिया गया है और न मैंने लिया है। बस यहीं पर आकर व्यक्ति मार खा जाता है। याद रखने वाली बात यह है कि– **ना कोई उत्तरदायित्व देता है, *ना कोई लेता है तो भी उत्तरदायित्व उत्पन्न हो जाता है।*** जैसे– घर में आग लग गयी। किसी ने कहा, चलो–चलो आग बुझाओ लेकिन मुझे किसी ने भी नहीं कहा। मैंने संकल्प भी किया नहीं था कि आग लगेगी तो मैं उसको बुझाऊँगा, न मुझको किसी ने दायित्व दिया था कि आग लगेगी तो बुझाना और न मैंने लिया था। अगर आग नहीं बुझाते तो क्या ये बुद्धिमत्ता मानी जायेगी? ये समस्या है।

ये तात्कालिक समस्याएँ अकस्मात् उत्पन्न होती हैं। मित्र रोगी हो गया और कोई दूसरा मित्र कहे कि– मैंने यह संकल्प नहीं किया था कि आप अगर बीमार पड़ गये तो मैं आपकी सेवा करूंगा, आपके लिये गरम पानी लाऊँगा, पौट लाऊँगा, आपको हॉस्पिटल ले जाऊँगा, आपको बाहर ले जाऊँगा, अपनी पढ़ाई छोड़कर आपका काम करूँगा। आपने मुझे कहा भी नहीं था कि मेरे बीमार होने पर आपको ये काम करना पड़ेगा। इसलिये मैं इसको निर्वहन नहीं करता हूँ। ऐसा तर्क देकर वह व्यक्ति सेवा से बचने का प्रयास करता है। ये बुद्धिमत्ता नहीं है।

ध्यान देने की बात है कि ***हम जिस घर में, जिस संस्था में, जिस समाज में, जिस देश में रहते हैं, उस परिवार, संस्था, गाँव और राष्ट्र के प्रति हमारे कुछ उत्तरदायित्व होते हैं। वो उत्तरदायित्व न लेने पर भी अनायास ही हमारे कंधों पर आ जाते हैं।***

समाज में माँसाहार बढ़ रहा है, शराबखोरी बढ़ रही है, कुटेव बढ़ती जा रही है, नशीले पदार्थों का सेवन बढ़ता जा रहा है, अश्लीलता बढ़ती जा रही है, आलस्य, प्रमाद बढ़ते जा रहे हैं, विदेशों की नकल बढ़ती जा रही हैं, पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति, आचार–विचार बढ़ते जा रहे हैं। लोग आलसी, प्रमादी और नास्तिक बनते जा रहे हैं। इस स्थिति में हम अगर ये विचार करें कि इन बुराईयों को दूर करना हमारा काम नहीं है, ये तो ब्राह्मणों का काम है, संन्यासियों का काम है। हम तो अपने घर में आराम से बैठे रहेंगे, कमाते–खाते रहेंगे हमें क्या करना। ये गलत सोच है। ये कर्त्तव्य है हमारा। इससे कोई व्यक्ति बच नहीं सकता।

दर्शन योग महाविद्यालय में आया एक विद्यार्थी यह विचार करे कि हम तो इस उद्देश्य को लेकर के यहां आयें हैं कि हम यहाँ पर केवल पढ़ेंगे। न हम सब्जी लेने जायेंगे, न डाक लेने जायेंगे, न पुस्तक का कोई काम लेंगे, न घी लेंगे और न उसे गरम करेंगे, न कमरे में झाडू लगायेंगे। हम बाजार से सामान नहीं लायेंगे, न मेज लायेंगे, न कुर्सी लायेंगे। हम सिर्फ पढ़ने–पढ़ाने में तत्पर रहेंगे और किसी काम में नहीं। हम बाह्य वृत्तियाँ नहीं करेंगे। ऐसे विद्यार्थी उत्तरदायित्वहीन होते हैं। उत्तरदायित्व होता है हमारा। यहाँ विद्यालय में रहें या अपने घर पर, दोनों जगह हर प्रकार का कार्य व्यक्ति को करना ही होता है। स्पष्ट है कि उत्तरदायित्व लिये जाते हैं, दिये जाते हैं, और उत्तरदायित्व न लिये जायें, न दिये जायें, तो भी स्वतः उत्पन्न होते हैं। उन्हें करना तो व्यक्ति का कर्त्तव्य होता है।

जो व्यक्ति अपने से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों को, व्रत्तों को, संकल्पों को, प्रतिज्ञाओं को, कर्त्तव्यों को ठीक प्रकार से निर्वहन नहीं करता है, वह कई समस्याओं से ग्रस्त होता है। ऐसा व्यक्ति अपने परिवार को, समाज को, राष्ट्र को और विश्व को समस्याओं से ग्रस्त कर देता है। आप देखेंगे, ये व्यावहारिक बात है, आपको रोजाना पकड़ में आयेगी। दिनचर्या से सम्बन्धित जो बातें बताई गई हैं, संस्था के ठीक प्रकार निर्वहन से सम्बन्धित जो क्रियाकलाप बताये गये हैं, उनका ठीक प्रकार निर्वहन न करने से समस्यायें आती हैं।

जिनके घर में आलसी, प्रमादी और फूहड़ व्यक्ति रहते हैं, उनका कमरा अव्यवस्थित होता है। कोई अतिथि आयेगा तो घर में हड़बड़ी मच जायेगी। उसकी सफाई करो, उसको वहाँ रखो, इसको यहाँ रखो, चद्दर बिछाओ,

कुर्सी को वहाँ से उठाओ, यहाँ रखो, मेज वहाँ से हटाओ। ऐसा करेंगे वे। ऐसा क्यों? इसलिए क्योंकि वे व्यक्ति उत्तरदायित्वहीन हैं, आलसी हैं, प्रमादी हैं। जब अतिथि आयेगा, विशेष व्यक्ति आयेगा तो वह व्यक्ति अपनी इज्जत बचाने के लिए पागल की तरह दौड़ेगा। इसके विपरीत जो व्यक्ति नियमित रूप से अपने घर के अंदर साफ–सफाई, व्यवस्था और प्रबंध ठीक प्रकार से रखता है, वो घबरायेगा नहीं। वह तो आराम से वार्तालाप करेगा। इस प्रकार से यह साफ है कि जो व्यक्ति अपने से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों को ठीक प्रकार से निर्वहन नहीं करता है, वह स्वंय के लिए ही समस्यायें पैदा कर लेता है।

जब अव्यवस्था होती है, हानि होती है, निंदा होती है, चुगली होती है या उसका कुप्रभाव पड़ता है, प्रतिष्ठा का नाश होता है तो व्यक्ति को दु:ख होता है। इसलिये जो उत्तरदायित्वहीनता है, उसको दूर करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।

भूमिका–उग्रवाद से सारा देश पीड़ित है। आचार्यवर उग्रवाद को परिभाषित कर रहे हैं :–

(65) उग्रवाद क्या है ?

आज एक समस्या संपूर्ण समाज में, राष्ट्र में, विश्व में व्यापक रूप से उपस्थित हो गयी है। इस समस्या का नाम है– उग्रवाद, आतंकवाद, अतिवाद। इनके अलग–अलग नाम, अलग–अलग रूप में सुनाई देते हैं। यह बड़ी भयंकर समस्या विश्व में उत्पन्न हो गई है। कोई देश इससे अछूता बचा नहीं है। यह संपन्न देशों में, सुसमृद्ध देशों में, पतित देशों में और शिष्ट देशों में भी विद्यमान है।

ये आतंकवाद क्या है ? आतंकवाद की समस्या का स्वरूप क्या है ? इसके कारण क्या हैं ? इसका समाधान क्या है ? इस पर भी हम विचार करते हैं।

आतंकवाद की परिभाषा करें – **समाज, परिवार, राष्ट्र और विश्व में शांतिपूर्वक, प्रेमपूर्वक, सद्‌भावनापूर्वक सभी व्यक्तियों को जीने का अधिकार है।** ***सभी को इस पृथ्वी के ऊपर खाने, पीने का अधिकार है, पढ़ने का अधिकार है, संसार के पदार्थों को भोगने का अधिकार है। सभी को अपने विकास का, उन्नति का या प्रगति करने***

का अधिकार है। उस अधिकार को अन्यायपूर्वक, भयपूर्वक, त्रासपूर्वक रोकना, रोकने का प्रयास करना उग्रवाद, अतिवाद या आतंकवाद है।

ये आतंकवाद केवल विमानों से, हेलिकाप्टरों से या मिसाइलों से जो युद्ध करना है, उसी को नहीं कहते हैं। ये राष्ट्र में, समाज में, गाँव में और आजकल तो परिवार में भी व्यापक होकर फैल गया है। अनेक परिवारों में देखा गया है कि परिवार में चाहे पाँच व्यक्ति हों, दस व्यक्ति हों, पन्द्रह व्यक्ति हों लेकिन उनमें से एक व्यक्ति अपनी उद्दण्डता से, अपनी उच्छृंखलता से, अपने अभिमान से, अपने अत्याचार से, अपनी मूर्खता से, अपने अज्ञान से बाकी सब को दुःखित करता है, हिंसित करता है, प्रताड़ित करता है, उत्पीड़ित करता है, शोषित करता है, अन्याय करता है, उनके साथ पक्षपात करता है, उनसे अनिष्ट कार्यों को करवाता है। भय, अशांति, त्रास उत्पन्न करता है। ये सब उग्रवाद है। अतः कहीं–कहीं पति भी उग्रवादी है, पत्नी भी उग्रवादी है, भाई भी और बहन भी उग्रवादी है। आगे चलें तो गुरू भी और शिष्य भी आतंकवादी है। ये सारे उग्रवाद के अंतर्गत निश्चित रूप से आ जायेंगे। सास भी आएगी, बहू भी आएगी, राजा भी आएगा और प्रजा भी आएगी। ***समाज के जिस–जिस क्षेत्र के अंदर जो व्यक्ति है, जो परिवार में है, संस्था में है, राष्ट्र में है, समाज में है, जो कोई व्यक्ति जहाँ रहता हुआ अन्यायकारी है, पक्षपाती है, वो उग्रवाद की परिभाषा में, आतंकवाद की परिभाषा में, अतिवाद की परिभाषा में आ जाता है।***

भूमिका–आचार्यवर आतंकवाद के कारणों का खुलासा कर रहे हैं:–

(66) नास्तिकता व्यक्ति को आतंकवादी बनाती है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि ये आतंकवादी क्यों बनते हैं ? अतिवादी क्यों बनते हैं? उग्रवादी क्यों बनते हैं ? इसका कारण क्या है ? इस पर विचार करना चाहिये। यदि सूक्ष्मता से, आध्यात्मिक, धार्मिक दृष्टिकोण से, दार्शनिक दृष्टिकोण से इसके पीछे छिपा मूल कारण देखा जाये तो आतंकवाद का एक ही कारण है, और वह है–नास्तिकता। सच्चे ईश्वर को न जानना, न मानना, न उसकी आज्ञाओं का पालन करना ही इसका मूल कारण है। इसी परिभाषा के अनुरूप परिवार के अंदर प्रत्येक व्यक्ति जो दूसरे के प्रति अन्याय करता है, पक्षपात करता है, बलात् कोई कार्य करवाता है, अत्याचार करता है, उत्पीड़न करता है, वो उग्रवाद की परिभाषा में आ जाता है। नास्तिक होकर ही,

अनीश्वरवादी होकर ही व्यक्ति उग्रवादी बनता है, अतिवादी बनता है। इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण सूक्ष्म और मूल कारण है, नास्तिकता। उसके बाद में कारण बनते हैं– ईश्वर की उपासना को न करना, उसकी आज्ञाओं का पालन न करना, नैतिकता को नहीं मानना।

(67) अन्याय आतंकवाद का जनक है।

इसके अतिरिक्त अन्याय भी आतंकवाद का कारण बनता है। किसी के ऊपर अन्याय किया जाता है और अन्याय को व्यक्ति सहन नहीं कर पाता है अथवा उसको ठीक प्रकार से न्याय नहीं मिलता है तो वह व्यक्ति उग्रवादी बन जाता है। शोषित व्यक्ति भी उग्रवादी बन जाता है। बेरोजगार व्यक्ति भी उग्रवादी बन जाता है। भयभीत व्यक्ति, प्रताड़ित व्यक्ति भी उग्रवादी बन जाता है। उच्छृंखल व्यक्ति जिसके ऊपर किसी का नियंत्रण न हो, उग्रवादी बन जाता है। अतिभोगवादी व्यक्ति उग्रवादी बन जाता है। अधिक धन और ऐश्वर्य आने पर भी व्यक्ति उग्रवादी बन जाता है। अभिमानी व्यक्ति भी उग्रवादी बन जाता है।

भूमिका–संसार के सभी दुःखों का मूल कारण अविद्या है। आतंकवाद भी इससे अछूता नहीं है:–

(68) आतंकवाद की जड़ अविद्या है।

इन सब के पीछे आध्यात्मिक अज्ञान, धर्म का अज्ञान, यह मूल कारण होता है। इसको अविद्या के नाम से कहा जाता है। ***चाहे स्वार्थ के कारण उग्रवादी बनता हो या अत्याचार करके बनता हो, अभिमानी होकर बनता हो, कोई भी कारण हो, इन सबमें अविद्या मूल कारण है।*** कहा गया है – ''अविद्या मूलम् इतरेषाम्।'' सबका कारण है ये अविद्या। ये जो उग्रवादी बनते हैं, इनमें से सब के साथ तो नहीं लेकिन हम यह कह सकते हैं कि ज्यादातर व्यक्ति के साथ में शोषण होता है, अन्याय होता है, पक्षपात होता है, बलात् उनके ऊपर अत्याचार होता है। आतंकवाद का निर्धनता भी कारण है, बेरोजगारी भी कारण है, समाज में असुरक्षा भी कारण है। राज्य की सही न्याय व्यवस्था न होना, दंड न दिया जाना, ये भी कारण हैं। इस प्रकार अनेक कारणों से ये उग्रवाद पनपता है।

अब तीसरी बात जानने की यह है कि उग्रवाद का क्या परिणाम है, क्या प्रभाव है, क्या फल है ? इस बारे में किसी को ज्यादा बताने की जरूरत

नहीं है। *विश्व के किसी भी कोने में कोई भी व्यक्ति आज सुरक्षित नहीं है। न जान सुरक्षित है, न माल सुरक्षित है, न चरित्र सुरक्षित है। कब, कहाँ, किस ओर से, किसके ऊपर आक्रमण हो जाये, हमला हो जाये, कोई निश्चिंतता नहीं है। इतना उग्रवाद फैल गया है कि सभी व्यक्ति त्रस्त हैं।* गाड़ियों में भय लगता है, बसों में भय लगता है, एरोप्लेन में भय लगता है। वर्ल्ड ट्रैड सेन्टर की घटना के बाद मैंने अखबार में पढ़ा था, बी.बी.सी में सुना था कि अमेरिका के अंदर बीस से पच्चीस प्रतिशत व्यक्तियों ने उग्रवादियों के कारण विमानों में यात्रा करना बंद कर दी। वे आशंका करने लगे कि कहीं ऐसा न हो जाये कि जैसे वो मर गये, हम भी मर जायें। इन यूरोपियन, अमेरिकन देशों के अंदर एरोप्लेन ऐसे हैं, जैसे हमारे यहाँ बसें हैं। लोग हमसे अधिक प्लेन से यात्रा करते हैं। मैं उतरा था हिथरो में। जो विश्व का संभवतः तीसरा या चौथा एरोड्रम है। सारे विश्व से प्रत्येक दो मिनट में एक विमान वहाँ पर आता है। दिन–रात, चौबीसों घंटे वहां बहुत भीड़ होती है। लोग बहुत यात्राएं करते हैं।

इतना उग्रवाद फैल गया है कि हम यहां पर सुरक्षित नहीं हैं। हम यह विचार करें कि हम यहाँ आश्रम में सुरक्षित हैं, लेकिन ऐसा नहीं हैं। केवल दिल्ली में उग्रवादी हैं, ऐसा नहीं है। अहमदाबाद में ही हैं, अक्षरधाम में हैं, ऐसा भी नहीं है। सभी जगह हैं उग्रवादी। हमारे आसपास ही बैठे हैं।

जो उग्रवाद है, वह व्यक्ति के मन में बैठा हुआ है। हर व्यक्ति उग्रवादी बन सकता है। उनको कोई पलीता लगाने वाला, कोई मशाल उचकेलने वाला व्यक्ति होना चाहिये। आप भी देखेंगे कभी हम उग्रवादी बन जाते हैं। जिसने थोड़ी सी सहनशक्ति खोई, धैर्य को खोया, वह व्यक्ति भी उग्रवादी बन जायेगा। क्या बोलना चाहिये, क्या नहीं बोलना चाहिये, कैसे व्यवहार करना चाहिये, कैसे नहीं करना चाहिये, क्या मुख्य है, क्या गौण है, इन सबको व्यक्ति भुला देता है और उग्रवादी बन जाता है।

इसके कारण हैं – राजा का सशक्त न होना, न्याय की व्यवस्था समाज में ठीक न होना, सामाजिक नियम और विधि–विधान का ठीक प्रकार से पालन न होना, जनता में अविद्या और बेरोजगारी होना। विभिन्न मत संप्रदायों का देश और समाज में उत्पन्न होना, विभिन्न देवी–देवताओं का होना भी उग्रवाद के अंदर कुछ न कुछ भूमिका निभाते हैं।

उग्रवाद के परिणाम हैं:– अशांति, भय, चिंता, शोक, अनिश्चिंतता। हर व्यक्ति इससे ग्रस्त है। कितना ही धनाढ्य, कितना ही विद्वान, कितना ही योगी क्यों न हो, ऋषि भी क्यों न हो, उस व्यक्ति को भी मन में ये आशंका रहती है कि पता नहीं कब, कौन आक्रमण कर दे। ***उग्रवाद का परिणाम और प्रभाव ये हुआ है कि सभी व्यक्ति भयभीत, आशंकित, त्रस्त, शोक–ग्रस्त और संशयित बन गये हैं।*** इसका ये भी परिणाम निकला कि जीवन के अंदर ईश्वरीय व्यवस्था से ठीक प्रकार से हमको जो आनंद, सुख और निश्चिंतता प्राप्त करनी चाहिये थी, वो आज समाप्त हो गई है।

भूमिका–आचार्यवर आतंकवाद का हल बता रहे हैं :–

(69) आस्तिकता, न्याय, सम्पन्नता, दण्ड व्यवस्था और शिक्षा के माध्यम से आतंकवाद खत्म किया जा सकता है।

अब इसके उपाय क्या हैं ? बिंदु रूप में यह भी देखें। हम आध्यात्मिकता से, सूक्ष्मता से, स्थूलता की ओर चलते हैं। ***सबसे पहला उपाय है – सच्चे ईश्वर की व्यक्तियों के मन मस्तिष्क में स्थापना करना।*** जितने भी उग्रवादी हैं, वे घोर नास्तिक हैं, हिंसक हैं, सच्चे ईश्वर को न मानने वाले और ईश्वर की व्यवस्था में विश्वास न रखने वाले हैं या फिर गलत ईश्वर की व्यवस्था में विश्वास रखने वाले हैं। सच्चे ईश्वर की आज्ञाओं का पालन न करने वाले हैं।

दूसरा उपाय है – समाज में जो अन्याय है, उस अन्याय को दूर कर के पूरी न्याय व्यवस्था की जाये। कोई भी व्यक्ति अन्याय से पीड़ित न हो, उसको जेल के सींखचों के अंदर प्रताड़ित न किया जाये, उसको पुलिस थाने के चक्कर न लगाना पड़े, उसको सरलता से, शीघ्रता से, और बिना पैसे के न्याय मिल जाये। आज इस समाज के अन्दर न्याय मिलना बहुत कठिन हो गया है। मैंने सुना है कि इस देश के अंदर लगभग दो करोड़ मुकदमे न्यायालयों में चल रहे हैं। आश्चर्य होता है कि दस–बीस–तीस वर्ष से मुकदमे पड़े हुये हैं मगर न्याय नहीं मिल पाया। न्याय में इतना लंबा समय लगता है।

तीसरा उपाय है – समाज, राष्ट्र और परिवार के व्यक्तियों को सुसंपन्न बनाना चाहिये। देश में गरीबी और बेरोजगारी न हो। सभी व्यक्ति रोजगार पर लगे हों। ठीक प्रकार से खाना, पीना, कपड़ा, रोटी, मकान सबको मिले।

चौथा उपाय – जो व्यक्ति उग्रवादी, आतंकवादी प्रवृत्तियों में लिप्त होता है, उसको पकड़कर इतना भयंकर और कठोर दंड दिया जाये कि उस दंड को देखकर अन्य व्यक्तियों को इतना त्रास आये कि वे उग्रवादी बनने का प्रयास न करें, हिम्मत न करें, साहस न करें, बल न लगायें।

पाँचवा उपाय है – राजा। इसके लिए एक महान् शक्तिशाली, वीर, आदर्श और बलवान राजा की अपेक्षा होती है। जैसे कि मनु ने कहा है जिसकी लाल आँखें हों और हाथ में काला डंडा पकड़ा हुआ हो ऐसे न्यायकारी राजा ही समाज में न्याय व्यवस्था ला सकते हैं। तब ही आतंकवाद दूर हो सकता है। ***ऐसे विशेष राजा एक ही दिन के अंदर ऐसे आतंकवादियों, उग्रवादियों, बलात्कारियों, डाकुओं, चोरों, लुटेरों, हत्यारों को पकड़कर और लाल किले के ऊपर या बड़े–बड़े शहरों में जहाँ वह पकड़ा जाये, वहीं जनता को इकट्ठा करके स्टेडियम में, मैदान के अंदर लाकर उसको फाँसी पर लटका या जिंदा जला दे या कुत्तों से, भेड़ियों से, शेरों से नुचवा दे, या गरम–गरम सलाखों से उसके माँस को नोंचा जाये, उसको काटा जाये, छीला जाये, गाड़ा जाये, पत्थर मारा जाये, उसके हाथ पैर काटे जाएं। इससे आतंकवाद एक ही दिन के अन्दर बंद हो सकता है। इतना कठोर राजा होना चाहिये।*** फिर आगे शोषण करने वाले व्यक्तियों को शोषण न करने दिया जाये।

शिक्षा का व्यापक प्रचार प्रसार हो। विभिन्न मत संप्रदायों का विनाश करके एक ईश्वर, एक भाषा, एक संस्कृति, एक शिक्षा का प्रचार–प्रसार होना चाहिये। जब तक देश के अंदर विभिन्न मत–संप्रदाय रहेंगे, भिन्न–भिन्न देवी–देवताओं की पूजा चलती रहेगी तब तक उग्रवाद को, उग्रवादपन को समाप्त नहीं कर सकते। इसी प्रकार जो देश में अज्ञान है, शिक्षा का अभाव है, उसको भी दूर करना पड़ेगा। जो पक्षपात, अन्याय आदि होता है, उसको दूर करना पड़ेगा। ये उग्रवाद को दूर करने के उपाय हैं। इन उपायों को अपनाए बिना उग्रवाद को समाप्त नहीं कर सकते। ये बहुत बड़ी समस्या है। ये दावानल के समान बढ़ती ही जा रही है।

न जाने ये अपनी चपेट में कब किसको ले ले। कोई नहीं जानता। आये दिन विश्व में, नगरों में कहीं न कहीं आतंकवाद का उग्ररूप दिखाई देता है, कभी मुम्बई में, तो कभी दिल्ली में, तो कभी यहाँ, तो कभी वहाँ। और ये बढ़ता ही जा रहा है।

जिस प्रकार का संविधान, जिस प्रकार की शिक्षा, जिस प्रकार का आचार–विचार, जिस प्रकार की परम्पराएँ, आज देश में चल रही हैं और जिस प्रकार के राजा चल रहे हैं, उसके आधार पर हम ये नहीं कह सकते कि उग्रवाद को समाप्त किया जा सकता है बल्कि उग्रवाद बढ़ेगा ही। निश्चित रूप से बढ़ेगा क्योंकि उग्रवाद के खात्मे की कोई व्यवस्था नहीं है। मूल कारणों को नष्ट नहीं किया जा रहा है। जो कुछ काम किये जा रहे हैं, ये तो पत्तों को सींचने वाली, डालियों को पानी देने वाली बात है। जड़ को नहीं।

मूल को नष्ट करने के लिये तो आस्तिकता, न्यायकारी राजा, शिक्षा, विभिन्न मत संप्रदायों का नाश आदि उग्रवाद के कारणों को दूर करना चाहिये। तब ये समस्या दूर हो सकती है। ये उग्रवाद के विषय में हमने कुछ विचार किया। हमको इस उग्रवाद के विषय में लोगों को सुसंस्कृत करना चाहिये।

आज स्थिति ये है कि पुलिस को, सेना को अधिकार नहीं है। इन्हें अधिकार दे दिया जाए कि जिस किसी उग्रवादी को देखो, उड़ा दो तो ही उग्रवाद बहुत बड़ी मात्रा में समाप्त होगा। पुलिस को गोली मारने का अधिकार नहीं है। सेना को गोली चलाने का अधिकार नहीं है। उसके सामने मारकाट हो रही है, अत्याचार हो रहा है, जब तक उसको आदेश नहीं मिलता, वह ऐसा नहीं कर सकती। बड़ी विचित्र स्थिति है। ये जो गन्दी राजनीति है, इसके कारण भी उग्रवाद फैलता है। एक पार्टी फैलाती है, दूसरी उसका दमन करती है। वो आयेगी, तो वो फैलायेगी। स्थिति ये बनती है।

उग्रवाद ईश्वर ने नहीं बनाया है, अपने आप नहीं बन गया है बल्कि हममें से किसी ने बनाया है और पनप रहा है और पनपाया जा रहा है। समाज में सभी वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, इस आतंकवाद को बुरा मानें। राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रवाद की भावना भी जगानी चाहिये। राष्ट्रीय चेतना भी बढ़ानी चाहिये। लोगों में राष्ट्रीय भावना आ जाये, लोग प्रबुद्ध हो जाएँ तो ऐसे व्यक्ति का, जो कि उग्रवाद को बढ़ाने का प्रयास करता है, उसका कोई भी विरोध कर सकता है। हम सुनते हैं कि भिंडरावाला जिसने कि इंदिरा गाँधी को मरवाया था, उसे अपने स्वार्थ के लिए कांग्रेस ने उत्पन्न किया था। ये लादेन जिसने कि अमेरिका पर आक्रमण किया था, उसको बढ़ाने वाला भी अमेरिका ही था। ऐसे जो उग्रवाद हैं, ये सारे अपने स्वार्थ

के कारण व्यक्तियों के द्वारा बढ़ाये जाते हैं। स्वार्थ को दूर करना चाहिये। लोगों में परोपकार की भावना, धार्मिकता, ईश्वर उपासना आदि आने चाहिये। ये इस समस्या का स्थायी समाधान है।

भूमिका–ईश–चिन्तन मन के अविद्या, राग–द्वेष आदि क्लेशों को दूर करता है। **आचार्यवर कहते** हैं:–

(70) अल्पज्ञ होने से जीवात्मा को लक्ष्य प्राप्ति हेतु ईश्वर से ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है।

मनुष्य के जीवन का लक्ष्य ईश्वर के द्वारा बताए हुए मार्ग पर चलने से पूरा होता है। ईश्वर के द्वारा बताई गई विधि को अपनाने से लक्ष्य प्राप्त होता है। ऋषियों के द्वारा बताए गए सिद्धांतों के, मंतव्यों के अनुसार चलने से लक्ष्य प्राप्त होता है! यह निश्चित बात है कि ***जीवात्मा के पास अपना कोई विशेष ज्ञान विज्ञान नहीं है। हाँ, उसमें ज्ञान को ग्रहण करने का सामर्थ्य अवश्य है।***

वेदों को पढ़ने से, दर्शनों को पढ़ने से एक बात हमारी समझ में आती है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए, सत्य क्या है, असत्य क्या है, धर्म क्या है, अधर्म क्या है, न्याय क्या है, अन्याय क्या है, आदर्श क्या है, अनादर्श क्या है, उचित क्या है, अनुचित क्या है, लाभकारी क्या है, अलाभकारी क्या है ? इन सब बातों का ज्ञान वेद में पूरा–पूरा लिखा है। उसके आधार पर ऋषियों ने अपने ग्रंथों में लिखा है और उसके आधार पर महापुरुषों ने अपनी पुस्तकों में लिखा है।

भूमिका–व्यक्तियों के प्रकार :–

(71) ज्ञान के दृष्टिकोण से चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, उस मार्ग पर चलने के लिए, उस शैली को अपनाने के लिए, उन साधनों का संग्रह करने के लिए आदमी समर्थ क्यों नहीं होता है। इसके विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें जानने योग्य हैं। सत्य को, आदर्श को, न्याय को, धर्म को, उचित बात को लेकर के चार प्रकार के व्यक्ति समाज में देखने में आते हैं।

(72) किसी को सत्य का पता नहीं होता है।

पहले प्रकार के व्यक्ति वे हैं–जिनको सत्य के विषय में, धर्म के विषय में, कर्त्तव्य के विषय में, न्याय के विषय में, उचित–अनुचित के विषय में ज्ञान–विज्ञान नहीं है। उन्होंने वेद व ऋषियों के ग्रथों को पढ़ा नहीं, वे महापुरुषों के संपर्क में आये नहीं, उनमें ऐसे संस्कार नहीं हैं, उन्होंने ऐसा स्वाध्याय नहीं किया, इस प्रकार के माता–पिता से उनको ज्ञान–विज्ञान नहीं मिला। वे व्यक्ति लगभग अज्ञानी हैं। सत्य, धर्म, आदर्श और उचित के विषय में उन्होंने अपनी मर्जी के अनुसार या समाज में जो कुछ देखा है, उन परंपराओं के अनुसार अपने जीवन को चला रखा है। जो उनके मन में आता है, जो वे समाज में देखते हैं, उसी प्रकार से किया करते हैं। आदर्श और न्याय, उचित और लाभकारी चीजों का ज्ञान उनके मस्तिष्क में ठीक प्रकार से अवस्थित नहीं है। ये पहली कोटि है, जिनको ज्ञान–विज्ञान मिला ही नहीं।

(73) किसी को उल्टा ज्ञान मिला।

दूसरी कोटि के आदमी वे हैं जिनको सत्य के विषय में, धर्म के विषय में, न्याय के विषय में, लाभकारी के विषय में, उचित के विषय में, श्रेष्ठ के विषय में जो भी ज्ञान मिला, वह गलत मिला। माता–पिता की ओर से, गुरूओं की ओर से, आचार्यों की ओर से उनको यह बताया गया कि सब कुछ ठीक है लेकिन वास्तव में वह गलत है। जिसे कहा गया कि वह धर्म है, लेकिन है वह अधर्म, जिसे लाभकारी बताया, वह है हानिकारक, जो समझा गया उचित, वह है अनुचित, जिसे पुण्य बताया है, वह है अपुण्य, जिसे बताया गया सुख देने वाला, लेकिन वह है दुःख देने वाला। कहा गया कि ये चीजें शांति देती हैं। लेकिन वास्तव में वे अशांति देती हैं। उल्टा बताया गया कि ये श्रेष्ठ है, लेकिन है अश्रेष्ठ। उनको उल्टा बताने के कारण ही वे व्यक्ति भटक रहे हैं। देश में और विश्व में वेद और अन्य सत्य शास्त्रों में जो सिद्धान्तों के बारे में बताया गया है, उसके विपरीत उनको बताया गया है। इसलिए वे व्यक्ति भटक रहे हैं।

उनके मन में बैठा हुआ है कि हम ठीक चल रहे हैं, हम धर्म में चल रहे हैं, हम सत्य में चल रहे हैं, हम न्याय में चल रहे हैं, हम उचित काम कर रहे हैं, हम अपना कर्त्तव्य ठीक प्रकार से कर रहे हैं, हम श्रेष्ठ हैं, हम उत्तम हैं लेकिन वास्तव में वेद के दृष्टिकोण से, ईश्वरीय दृष्टिकोण से वे

व्यक्ति नितांत गलत हैं। उदाहरण लेना है तो अन्य धर्म और मत संप्रदायों का लीजिए। मांस खाना, शराब पीना, अधिक पत्नियाँ रखना, ईश्वर को एक ही स्थान में मानना, पापों को क्षमा करने वाला मानना आदि ये उनके दिमाग में बैठा दिया है। छल से, कपट से, अन्याय से, धोखाधड़ी से विधर्मियों को, मत समुदाय वाले को मारना, पिटाई करना ठीक है, यह उन्होंने दिमाग में बैठा रखा है।

दूसरे प्रकार के व्यक्ति वे हैं जिनको बताया गया है और वे मानते हैं कि यह धर्म है लेकिन है वो अधर्म। पहले वाले जानते, मानते ही नहीं, दूसरे वाले गलत मानते हैं।

(74) ''सब कुछ ठीक है'' किसी को ऐसा ज्ञान मिला।

अब तीसरी कोटि के व्यक्ति आते हैं। तीसरी कोटि के व्यक्तियों को दोनों प्रकार का ज्ञान मिला। यह भी ठीक है, वह भी ठीक है। मुस्लिम भी ठीक है, ईसाई भी ठीक है, आर्य समाज भी ठीक है, सब ठीक है। सर्व धर्म सम्मेलन धर्मनिरपेक्षता वाली स्थिति आती है। सेक्युलरिजम की स्थिति आ गई है जो कि सब को ठीक मानती है। मांस खाना भी ठीक है, कोई बात नहीं और दूध पीना भी ठीक है। इन्होंने निश्चितता से ठीक प्रकार से ज्ञान प्राप्त नहीं किया कि ये ठीक है ? ये गलत है, ये उचित है ये अनुचित है। यह आज हमारे देश में और विश्व में बहुत बड़ा रोग है।

आने वाली पीढ़ी के दिमाग में कूड़ा–कचरा भर दिया गया है कि सब ठीक है। सब क्या ठीक है ? एक ठीक होता है, दो ठीक नहीं होते हैं। सत्य एक होता है, धर्म एक होता है, न्याय एक होता है। मुकदमें होते हैं न, दोनों पक्ष ठीक नहीं होते हैं। एक की जीत और एक की हार होती है। फील्ड में उतरते हैं तो प्रतिस्पर्धाएँ होती हैं, कम्पटीशन होता है। एक जीतेगा और बाकी सब हार जाएँगे। दौड़ में दो सौ, पाँच सौ, हजार आदमी भाग लेते हैं लेकिन जीतने वाला एक होता है। सत्य एक है, ईश्वर एक है, एक प्रकार का लक्षण होता है। उसका विरोधी लक्षण नहीं हो सकता।

तीसरी कोटि वाले वे व्यक्ति हैं जिन्होंने भिन्न–भिन्न प्रकार का ज्ञान–विज्ञान प्राप्त किया है, जिनके दिमाग में बैठ गया है कि यह सब ठीक है। वे भी गलत चलते हैं। उनकी दृष्टि ऐसी नहीं है कि ये ठीक है, वह गलत है और गलत का विरोध करो, ठीक का समर्थन करो। आज देश के अंदर

अधिकाँश व्यक्ति कम्युनिस्ट जैसे हो गए हैं। एक सत्य को ग्रहण करने वाले, एक ही ईश्वर को ग्रहण करने वाले,एक मार्ग को ग्रहण करने वाले व्यक्ति नहीं रहें।

(75) ''कुछ ऐसे हैं जिन्हें सत्य का ज्ञान मिला'' ।

चौथी कोटि उन व्यक्तियों की है जिन्हें सत्य जानने को मिला, सुनने को मिला, पढ़ने को मिला, समझने को मिला और वे समझ गए। दिमाग में उनके है, बुद्धि में उनकी बैठ गया कि यह ठीक है फिर भी वे उस दिशा में चलते नहीं हैं। बचपन से सुनते आए हैं, पढ़ते आए हैं, लिखते आए हैं, बताते आए हैं, प्रवचन देते आए हैं। उन्होंने बार–बार सुना है कि ये धर्म है, ये अधर्म है, ये न्याय है, ये अन्याय है, ये उचित है, ये अनुचित है, ये लाभकारी है, ये हानिकारक है। लेकिन अपने संस्कारों के कारण, अपने स्वार्थों के कारण वह व्यक्ति जानता हुआ भी, मानता हुआ भी, लिखता हुआ भी और प्रवचन देता हुआ भी वैसा आचरण नहीं करता है। यही तो सबसे बड़ी विडम्बना है।

भूमिका–शाब्दिक विद्वान और अज्ञानी में से कौन ज्यादा नुकसान उठाता है:–

(76) सत्य जानकर वैसा आचरण नहीं करने वाला सबसे अधिक हानि उठाता है।

ध्यान दीजिए व्यक्ति वे भी हैं जो नहीं जानते कि उनका कर्त्तव्य क्या है ? ये कम हानिकारक है। उससे अधिक हानिकारक वह है जो गलत जानते हैं। वे अधिक हानि उठाते हैं और दु:ख पाते हैं। इससे अधिक हानिकारक वह है जो सब कुछ ठीक मानते हैं और संशय में पड़े हुए हैं। लेकिन सबसे अधिक दु:खदायी और अपना विनाश करने वाले वे हैं जो जानते हैं कि ठीक क्या है लेकिन वैसा करते नहीं हैं।

आर्य समाजी लोग संसार के अंदर सबसे अधिक दंड के भागी हैं। सत्य को जानकर भी वे ठीक नहीं करते। इसमें आप भी आ रहे हैं और मैं भी आ रहा हूँ। हमको जो सत्य ज्ञान मिला है, वह स्वामी दयानन्द के माध्यम से, वेदों और दर्शनों के माध्यम से मिला। किसी और वर्ग, संम्प्रदाय को यह ज्ञान नहीं मिला। हमारा ज्ञान सबसे अधिक है। बड़े से बड़ा मौलवी, बड़े–से–बड़ा पादरी क्यों न हो, बड़े से बड़ा महात्मा क्यों न हो, संत क्यों न हो, विभिन्न

मत–संप्रदाय वालों के सामने हम ज्ञान–विज्ञान के दृष्टिकोण से अधिक श्रेष्ठ और महान् होते हुए भी यदि हम उस रास्ते पर नहीं चलते हैं तो सबसे अधिक दंड भी हमें ही मिलेगा। मौलवियों को कम दंड मिलेगा, पादरियों को कम मिलेगा, पंडितों को कम मिलेगा, नास्तिकों को कम मिलेगा, आर्य समाजी व्यक्ति को ज्यादा दंड मिलेगा। इसका प्रमाण वेद का यह कथन है कि– ***जो जानता है, फिर भी गलत करता है, वह घोर अंधकार में गिरता है।***

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः।। (यजुर्वेद)

आर्य समाजी इस संसार में सबसे अधिक सुख को भोग सकते हैं। मानसिक सुख और आध्यात्मिक सुख भी अधिक भोग सकते हैं क्योंकि वे सच्चे ईश्वर को जानते हैं। हम सच्चे धर्म को जानते हैं, सच्ची आदर्श परम्पराओं को जानते हैं, सच्चे न्याय को जानते हैं। हमारे पास में जितना ज्ञान–विज्ञान है, उतना किसी के पास में नहीं है लेकिन हमें जो ज्ञान–विज्ञान मिला है, उसका ठीक प्रकार से प्रयोग करने पर ही हम इसका ठीक लाभ उठा सकते हैं, सुखी हो सकते हैं। ***यदि हमारे पास ज्ञान है और हम उसका ठीक प्रकार से प्रयोग नहीं करते हैं तो लाभ नहीं उठा सकते हैं।*** इसका उदाहरण लेते हैं – जैसे एक आदमी के पास में दो–चार हजार रुपये की पूंजी है, बैंक बैलेंस है और उसको हजार रुपये, दो हजार रुपये मासिक वेतन मिलता है, लेकिन एक हजार रुपये को वह ठीक प्रकार से ठीक रूप में खर्च कर खायेगा, कपड़े पहन लेगा, ठीक प्रकार से दिनचर्या बनायेगा तो ठीक प्रकार जिंदगी बनायेगा और अपने जीवन को सुखी बनाएगा। वह उसका ठीक प्रकार से उपयोग कर लेगा। हजार दो हजार रुपये में वह व्यक्ति ठीक रहेगा।

एक व्यक्ति के पास पचास लाख रुपये बैंक में पड़ा है। वह ठीक से खाता नहीं, ठीक से पहनता नहीं। उन रुपयों से जो उपयोग होना चाहिए, वह उसका उपयोग नहीं कर रहा है या गलत कर रहा है। हम उसको मूर्ख मानते हैं। एक आदमी के घर में आलमारी में पचास लाख रुपये पड़े हैं। लेकिन बेचारा सूखी रोटी खा रहा है, फटे हुए कपड़े पहन रहा है। पास रखे पैसे से कोई सुख नहीं। स्वयं ही खाता–पीता नहीं है, न ही पड़ोसियों को, मित्रों को खिला रहा है, न किसी और को दे रहा है। और वे रुपये पड़े हैं, पड़े हैं, पड़े हैं। उस पैसे का निवेश ही नहीं हो पा रहा है। ब्याज मिल ही नहीं पा रहा है। कोई एक टका देने वाला नहीं है।

हिन्दुस्तान में बड़े से बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति घर में अपने पास पचास लाख रुपये नहीं रखेगा। बैंक के लॉकर में जमा करेगा।

भूमिका–प्रार्थना का एक क्षेत्र क्या होना चाहिए ? आचार्यवर के शब्दों में:–

(77) राष्ट्र, समाज, परिवार और स्वयं की उन्नति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए।

याद रखो, हमारे पास काम करने की बहुत शक्ति है। अगर शरीर से बूढ़े हो गए हैं, ज्यादा चल–फिर नहीं सकते हैं, लेकिन मन से फिर भी बहुत काम कर सकते हैं। आर्डर दे सकते हैं कि ये काम करो, वो काम करो, ऐसा काम करो। मन में विचार कर सकते हैं, चिन्तन कर सकते हैं, आशीर्वाद दे सकते हैं, आध्यात्मिक मनन कर सकते हैं, निदिध्यासन कर सकते हैं। लेकिन व्यक्ति वो काम करता नहीं है।

समय, बुद्धि और मन ऐसी चीजें हैं कि समय को लेकर बुद्धि के माध्यम से और ईश्वर के दिये गये ज्ञान–विज्ञान के माध्यम से एक दिन में अपने और समाज के कई महान् परोपकार के काम कर सकते हैं। एक व्यक्ति मुझे मिले। वे एक दिन में अनेक बार संसार के कल्याण की प्रार्थना करते हैं। आप मुझे बताएँ कि– क्या आप कभी भी कहीं भी बैठें हों, चाहे फैक्ट्री में हों, दुकान में हों, घर में हों, बस में हों, गाड़ी में हों, आप दिन में एक बार दो मिनट के लिए दुनिया के लिए प्रार्थना करते हैं कि हे परमपिता परमात्मा! दुनिया के लोगों का कल्याण हो, उनको सद्बुद्धि मिले, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो, उनको धन मिले, उनको सम्पन्नता मिले, वे सभी संगठित हों, सब ठीक प्रकार से अपने जीवन को चला सकें।

दुनिया के लिये तो दूर की बात है, व्यक्ति अपने परिवार के लोगों के लिए भी प्रार्थना नहीं करता। अपने परिवार को छोड़ दीजिए, अपने निकटस्थ के जो व्यक्ति हैं, जो क्लोज सरकल वाले हैं, अपनी पत्नी है, भाई हैं, पिता है, उनके लिए भी प्रार्थना नहीं करते। उसको छोड़ दीजिए, अपने लिए प्रार्थना करने वाले व्यक्ति नहीं मिलते हैं कि परमात्मा मुझे जल्दी से जल्दी सद्बुद्धि दे ताकि मैं जल्दी से जल्दी अपने जीवन का उद्धार कर सकूँ। नहीं भूलना चाहिए कि प्रार्थनाओं का जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

मैंने आपको बताया था कि इस संसार के अंदर चार प्रकार के आदमी हैं – पहले सत्य को, आदर्श को न जानने वाले, दूसरे गलत जानने वाले, तीसरे सबको ठीक जानने वाले और चौथे वह हैं जो जानते हैं कि सत्य क्या है, न्याय क्या है, आदर्श क्या है ? पर उस पर चलते नहीं हैं। चौथे प्रकार के आदमी को कई श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। एक वे हैं जो धीमा चलते हैं। जो अपने आप को मानते हैं कि मैं बहुत अधिक दानी हूँ। मैं बहुत बड़ा तपस्वी हूँ। मैं बहुत बड़ा ईश्वर का भक्त हूँ। मैं बहुत बड़ा साधक हूँ। मैं बहुत बड़ा त्यागी हूँ। इस प्रकार वह थोड़ा सा त्याग करता है, थोड़ा पढ़ता है, थोड़ा चिन्तन करता है, थोड़ा उसके अंदर वैराग्य है, थोड़ा उसके अंदर समर्पण है, थोड़ा उसके अंदर भक्ति है लेकिन मान लेता कि ये गुण मेरे में बहुत अधिक हैं। ये मिथ्या ज्ञान है। एक वे हैं जो थोड़ा चलते हैं, थोड़ा करते हैं। अगर कठिनाईयां आती हैं, बाधायें आती हैं, कष्ट आते हैं तो वह उन कष्टों को, बाधाओं को, आपदाओं को और दु:खों को सहन नहीं करते हैं। उनके पास में समस्याओं को हटाने का और समाधान करने का सामर्थ्य नहीं है। यद्यपि व्यक्ति आदर्शों पर चलता है, धर्म पर चलता है, न्याय पर चलता है, पर कठिनाईयों को देखकर छोड़ देता है।

आदर्श व्यक्ति वह है जो एक बार ठीक से सुनकर के, समझ करके, विचार करके और निर्णय लेकर के चलता रहता है, चलता रहता है। उसके मार्ग में कठिनाइयाँ आती हैं, बाधा आती है, संकट आते हैं, विरोध होता है, आरोप लगाए जाते हैं, विश्वासघात होता है, खूब प्रकार के दु:ख आते हैं, भूखा रहना पड़ता है, प्यासा रहना पड़ता है, निंदा होती रहती है, चुगली होती रहती है। फिर भी वह मार्ग पर चलते रहता है। वह ईश्वर को सामने रखता है, समाज को नहीं।

हमारी बड़ी विडम्बना यह है कि ***हम जो कार्य करते हैं, उन कार्यों के परिणाम क्या होंगे, और दुनिया क्या कहेगी, इसको हम सामने रख लेते हैं। होना यह चाहिए कि हम जो कार्य कर रहे हैं, उस पर ईश्वर क्या कहेगा, उस कार्य का मेरी आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ेगा अथवा बुद्धिमान व्यक्ति क्या कहेगा, ऐसा विचार करें।*** हम प्राय: जो कार्य करते हैं, उनके परिणामों को इस दृष्टिकोण से रखकर कार्य करते हैं कि दुनिया उसे ठीक कहेगी। इस प्रकार से कार्य को हम नहीं करते हैं कि ईश्वर ठीक कहेगा। चाहे दुनिया सारी विरोध करे, हम अपने जीवन की उन्नति

कर सकते हैं और पतन को रोक सकते हैं। इस विषय में हम जो लौकिक प्रमाण है, लौकिक मेजरमेन्ट है, उसको न अपनाएँ।

एक व्यक्ति जिसे रोग है, उसे ही औषधि दी जाती है। हम अपनी उन्नति और अवनति को जानते नहीं, ये सबसे बड़ा रोग है। उन्नति क्या है ? अवनति क्या है ? इसको हम समझ लें तो हम ठीक प्रकार से उन्नति कर सकते हैं और अवनति को रोक सकते हैं।

उन्नति क्या है ? इसको हम समझ लें। उन्नति हो रही है, प्रगति हो रही है, विकास हो रहा है, उत्कर्ष हो रहा है, हम ऊपर उठ रहे हैं, ईश्वर की ओर जा रहे हैं, लक्ष्य नजदीक आ रहा है, इसका प्रमाण इस बात को लेकर के चलना चाहिए कि हमारे जीवन में शांति बढ़ रही है, प्रसन्नता अधिक उत्पन्न हो रही है, निश्चिंतता अधिक है, निर्भयता अधिक बढ़ रही है, स्वतन्त्रता अधिक हो रही है, जीवन में दिनचर्या आदर्श रूप में चला रहे हैं, सहन शक्ति बढ़ रही है, धैर्य बढ़ रहा है, पुरूषार्थ बढ़ रहा है, तपस्या बढ़ रही है, सच्चाई और प्रेम बढ़ रहा है, संयम बढ़ रहा है और समझदारी बढ़ रही है। ये उन्नति के चिन्ह हैं।

अवनति क्या है ? इसको हम समझ लें। अशांति पैदा हो रही है, आलस्य–प्रमाद हो रहा है, झूठ की प्रवृत्ति बढ़ रही है, मन में असंतोष पैदा हो रहा है, चिंता हो रही है, भय उत्पन्न हो रहा है, हम इंद्रियों के गुलाम हो रहे हैं, ईश्वर से दूर जा रहे हैं, दिनचर्या अस्त–व्यस्त हो रही है, स्वास्थ्य गड़बड़ा रहा है, रोग उत्पन्न हो रहे हैं तो समझना चाहिए कि अवनति हो रही है।

उन्नति और अवनति के इन लक्षणों को सामने रखकर देखेंगे और तुलना करेंगे तब तो ठीक है। अगर ये देखेंगे कि पहले मकान था तीन कमरे का, अब हो गया है सात कमरे का। पहले मकान की कीमत थी पचास लाख, अब हो गई है एक करोड़। पहले फैक्ट्री की कीमत थी अस्सी लाख, अब हो गई है डेढ़ करोड़। केवल धन और धन से उपलब्ध होने वाले साधनों को लेकर के हम अपनी उन्नति और अवनति को समझेंगे तो ये जो मेजरमेंट है, ये जो प्रमाण है, यह गलत है।

सुख, आनन्द, शांति, निश्चिंतता, निर्भीकता और स्वतंत्रता, ये केवल पैसे से ही मिलती है और पैसे से उपलब्ध होने वाले साधनों से ही मिलती

है, इस बात को बुद्धि से निकाल देना चाहिए। ध्यान दीजिए– सुख, आनन्द, शांति, निर्भीकता, स्वतंत्रता, संतोष और तृप्ति, ये ईश्वर से भी मिलती है। ये आत्मा के ज्ञान–विज्ञान से भी मिलती है। इसका स्त्रोत केवल धन नहीं है। हाँ, धन से भी ये चीजें मिलती हैं। ***धन से मिलने वाले साधनों से सुख मिलेगा, संतोष मिलेगा, रक्षा होगी लेकिन ईश्वर से और आत्मा से अर्थात् ईश्वर के ज्ञान से और आत्मा के ज्ञान से व्यक्ति को अधिक शांति मिलती है, सुख मिलता है, आनन्द मिलता है, तृप्ति मिलती है, संतोष मिलता है, स्वतन्त्रता मिलती है और व्यक्ति निश्चिंत होकर के संसार में चलता है,*** ये मानना चाहिए।

मैं आपके सामने हूँ। मैं अपने जीवन को चला रहा हूँ। मेरे पास फैक्ट्री नहीं, भाई नहीं, पत्नी नहीं, मित्र नहीं, साथी नहीं। जिसको मैं अपना मानूँ, जो लौकिक संबंधों में होता है, वह मेरा कुछ भी नही। वे कहते हैं– इस संपत्ति में इतना हिस्सा मेरा है, वो फैक्ट्री मेरी है, वो दुकान मेरी है, वो प्लाट मेरा है, ये शेयर मेरे हैं, वो कैश मेरा है। ये अलग–अलग बांटते हैं न। मेरा ऐसा संबंध नहीं है।

घर छोड़े मुझे 35 वर्ष हो गए हैं। अच्छा खाता हूँ, पीता हूँ, घूमता हूँ, फिरता हूँ और सब काम करता हूँ और शायद लग रहा है कि मैं ज्यादा सुखी हूँ। हो सकता है कि आपके पास पचास लाख रूपए हों और आपके पिताजी 'शायद' ये मान लें कि मेरा मकान तो एक करोड़ का है और मेरी दुकान है और ये भिखमंगा रोटी माँगने वाला आचार्य ज्ञानेश्वर क्या सुखी होगा। ये जहाँ–जहाँ जाता है, रोटी माँगता है, पैसा माँगता रहता है, कोई कपड़ा नहीं है, उसके पास कुछ नहीं है। इसलिए ये क्या सुखी होगा। मैं 'शायद' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। अगर बहुत अधिक विवेकी व्यक्ति होता तो मैं सीधा कह देता। इतनी समझ नहीं है मगर विचार करेंगे तो पता चल जाएगा कि मैं भी सुखी हूँ । देखिए, आपके बेटे हैं। आपकी जितनी उम्र में होऊँगा तो मैं भी कुछ तो बेटे बना लूंगा। आप बीमार पड़ते हैं तो आपकी पूछ लेने वाले कितने आते हैं ? चार आएंगे, छह आएंगे, दस आएंगे, साठ आएंगे। आज दुनिया को खबर पड़ जाए कि ज्ञानेश्वर बीमार हो गया है, उसे लकवा हो गया है तो यहां पर सैकड़ों आदमी पूछने आएंगे। मैं चाहे चेन्नई में जाऊं, चाहे नागालैंड में जाऊं, चाहे जम्मू–कश्मीर में जाऊं, बंगाल में जाऊं, चाहे उड़ीसा में जाऊं या चाहे मध्यप्रदेश में जाऊं कहीं भी जाऊं, हर जगह निष्काम

भावना से काम करता हूँ। अहमदाबाद में मूसलाधार वर्षा हुई तब मेरे पास चार, पांच सौ फोन आए होंगे कि आप सुरक्षित तो हैं न। गुजरात के हिन्दू–मुस्लिम झगड़े में इतने फोन, इतने पत्र आए कि पूछो मत।

घर छोड़े मेरे जीवन के 35 वर्ष तो बीत गए हैं। कोई कष्ट नहीं हैं। और आगे भी बीत जाएंगे। हमने अपना जीवन जैसा बना कर रखा है, उसमें छोटे–मोटे कष्ट तो आएंगे, हम उनको सहन करेंगे। और ऐसा कष्ट आए भी तो किसी को दोष नहीं देंगे कि क्यों नहीं आए देखने।

जैसे गाय बूढ़ी होती है, कुत्ता बूढ़ा होता है। पशु बूढ़े होते हैं, तो वे अपने जीवन के अंतिम क्षण में कोने में जाकर बैठ जाते हैं। वे एक कोने में सड़क किनारे जाकर के क्या करते हैं, ये मुझे पता नहीं। लेकिन हम अपना स्वभाव ऐसा बना लेंगे कि उस समय ईश्वर को स्मरण करेंगे। उस समय माता को, बाप को, बहिन को, किसी शिष्य को या किसी और को याद नहीं करेंगे कि हाय ! जिनके लिए हमनें इतना किया, ये जीवन लगा दिया, वे क्यों नहीं आए। जो कर्म हमनें किए हैं, उनके जो परिणाम हैं, वे तो हमें भुगतने ही पड़ेंगे। हमने शरीर से उल्टे–पुल्टे कार्य किए हैं तो प्रकृति हमें कभी नहीं छोड़ेगी। हर किसी को लकवा हो सकता है, टी.बी. हो सकती है, कैंसर हो सकता है। हमने बहुत विचार कर घर बार छोड़ा है। हमनें ऐसे नहीं अपना घर बार छोड़ दिया। ऐसा विचार करते रहेंगे तो दुःख नहीं होगा।

मैं आज 54 वर्ष का हो गया हूँ। ***आपने संपत्ति इकट्ठी की है। आपकी सम्पत्ति बाहर के लोगों के पास होगी। हमने भी सम्पत्ति इकट्ठी की है। हमारी संपत्ति हमारे अंदर है। हमने अंदर बैंक बैलेंस इकट्ठा कर रखा है। इसलिए वो कोई चुरा नहीं सकता है।*** हम कष्ट में हाय–हाय करें, यह ठीक नहीं। हम जब वृद्ध होंगे तो हमारी भी सेवा होने की संभावना है। मतलब यह है कि लोग हमारी भी चिन्ता करेंगे। ये नहीं कि हमनें माता–पिता को छोड़ दिया है, बच्चे नहीं पैदा किए हैं, तो हमको कोई पूछेगा नहीं। देखिए, जो व्यक्ति विवेकी होता है, ज्ञानी होता है, योगाभ्यासी होता है, तपस्वी होता है, उसको जरा (वृद्ध) अवस्था कम सताती है। सताती तो है लेकिन कम सताती है। वह हाय–हाय नहीं करता है। जैसे घर में देखते हैं बूढ़ों को। बुढ़ापे में हाय–हाय–हाय चिल्लाते हैं। उनको दुःख होता है। विवेकी व्यक्ति चिल्लाता नहीं, दुःखी नहीं होता। हम भी धन इकट्ठा कर रहे हैं, मन के अन्दर अपना

बैंक बैलेंस बना रहे हैं। आप भी ऐसा बैंक बैलेंस बनाएँ, ताकि कोई कष्ट न हो और उसका खूब उपयोग कर सकें।

भूमिका–आचार्यवर वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोष बता रहे हैं :–

(78) आज की शिक्षा दैनिक जीवन में असफलता दिलाती है।

आज के प्रवचन में मैं आर्ष शिक्षा प्रणाली के सिद्धांतो को, मंतव्यों को, लाभों को, उपयोगिता को बता रहा हूँ, ताकि इन्हें ठीक प्रकार से समझकर हम अपने लिए, संस्था के लिए, समाज के लिए और राष्ट्र के लिए कुछ विशेष कार्य कर सकें। ***आज की अनार्ष विद्या के अंदर केवल मात्र शब्दार्थ सम्बन्ध अर्थात् शब्द, उसका अर्थ और शब्द और अर्थ के बीच में मौजूद वाच्य–वाचक सम्बन्ध को पढ़ाया जाता है। इसके अतिरिक्त कोई विशेष कार्य नहीं होता है।***

ऐसी स्थिति में शहरों के अन्दर जब बच्चा घर में रहता है, तब तो उसको करने के लिए प्रायः कोई काम होता ही नहीं है। उसे न रोटी बनानी, न कपड़े धोना, न बिस्तर बिछाना, न पानी लाना, न लकड़ियाँ काटना, न सामान की व्यवस्था करना, न झाड़ू लगाना, न अतिथियों का सत्कार करना, न और कोई विशेष परिवार सम्बन्धी, गृह सम्बन्धी कार्यों को करना। बेचारी माँ किया करती है सारा काम, बाप ढ़ोता है सिर पर भार, और ये विद्यार्थी ठाठ से अपने कमरे में जाकर पढ़ता है। ये अनार्ष विद्या या पाश्चात्य विद्या का उदाहरण है। ये आदत, ये प्रवृत्ति और ये संस्कार आपमें और मेरे में सभी में पड़े हुए थे और हैं। अपने में तो मैंने सभी संस्कारों को मार के रख दिया।

आर्ष शिक्षा प्रणाली के अंदर विद्यार्थी जहाँ जाता है, जिस संस्था में रहता है, वह उसका घर ही होता है। उस विद्यार्थी का दायित्व उसके सारे घर (संस्था) के प्रति होता है। ***जैसे घर में माँ की भी जिम्मेदारी होती है, बाप की जिम्मेदारी होती है, वैसे ही गुरुकुल या विद्यालय में पढ़ने वाले ब्रह्मचारी की भी कुछ जिम्मेदारी होती है, इस बात को ठीक प्रकार से दिमाग में बैठा लेना चाहिए।***

स्कूल में पढ़ने वाला बच्चा केवल पढ़ाई की ओर ध्यान देता है या और कोई खेल (गेम) में ध्यान देता है। कोई अच्छा होनहार बच्चा होता है, और उसके पास टाइम होता है तो वह माँ–बाप के बताये हुए दो–चार काम कर

देता है और बस कोई काम नहीं है उसका। पानी का बिल भरना है, गैस का बिल भरना है, सब्जी लाना है, अनाज खरीदना है, कपड़े धोना है, नौकर पर ध्यान देना है, अपने सामान की साफ–सफाई करना है, घर का मेंटेनेन्स करना है, वह ये कुछ नहीं करता है। बिना इसके जो पढ़ाई होती है, वह बोगस पढ़ाई होती है। ऐसी पढ़ाई आप पढ़कर आए हैं और मैं भी। इसका परिणाम मुझे सभी गुरूकुलों और विद्यालयों में दिखाई दे रहा है।

माँ को कोई नहीं कहता है कि चार बजे क्यों नहीं उठ रही है। उसके ऊपर डंडा नहीं, उसके ऊपर कोई घंटी नहीं। अपने आप चार बजे वह उठेगी और अपने आप झाडू लगायेगी, पोछा करेगी, लकड़ी लायेगी, चूल्हा जलायेगी, खाना बनायेगी, कपड़े धोयेगी, अतिथियों की सेवा करेगी, पात्र साफ करेगी। दुनिया भर का काम वह सुबह से शाम तक अपने मन से करती रहेगी।

मैंने आपसे कई बार कहा है कि इस क्षेत्र के अन्दर अपनी पत्नी का काम, अपनी माँ का काम, अपने पिता का काम, अपने भाई का काम, अपने पुत्रों का काम, अपने पड़ोसियों का काम और अपने नौकर का काम, ये सब काम विद्यार्थी को करने होते हैं। हमने यह काम पच्चीस वर्ष तक किया है। लेकिन अब मैं विवश हूँ। पच्चीस वर्ष के बाद मैंने कपड़े धुलवाना शुरू किया। मैंने पात्र साफ करवाना शुरू किया है। मैंने झाडू लगवाना शुरू किया ताकि लोगों की भलाई के जरूरी कामों के लिए ज्यादा समय निकाल सकूँ। मैंने इसमें एक बात ये भी देखी कि तपस्वी आचार्यों के बीच में रहकर हमने कुछ तो सीखा। हमने देखा कि ब्रह्मचारी या विद्यार्थी आजकल तो राजकुमार सा रह रहा है, उसे कुछ भी नहीं करना आ रहा है। वह केवल शब्दार्थ सम्बन्ध ा को ले रहा है। पढ़ा–लिखा और बैठ गया कमरे में। वहाँ पर टेढ़ा होकर पढ़ रहा है, सीधा होकर पढ़ रहा है, लेटकर पढ़ रहा है, उकडू होकर के पढ़ रहा है। बस, पढ़ रहा है, खा रहा है और सो रहा है।

न विद्यार्थी को बाहर का काम है, न लकड़ी काटने का काम है, न अतिथि सेवा का कोई काम है। उसे व्यक्तिगत कार्य करना नहीं आता है, कपड़े धोना नहीं आता है, न पात्र साफ करना आता है, न चप्पल ठीक रखनी आती है, न अपना शौचालय साफ करना आता है। ऐसे व्यक्ति को क्या दर्शन पढ़ाया जाए, क्या विद्या दी जाए, उल्टा हमें ही पाप लगेगा।

(79) आज की पढ़ाई से आदर्श जीवन का निर्माण नहीं हो सकता।

इस शैली से चलने वाला कोई व्यक्ति आर्ष शिक्षा प्रणाली से अपने जीवन का निर्माण नहीं कर सकता है। हो सकता है कि – वह दर्शनाचार्य बन जाए, व्याकरणाचार्य बन जाए, वेदाचार्य बन जाए लेकिन आदर्श ब्रह्मचारी बन जाये, आदर्श वैदिक विद्वान बन जाये और ईश्वर की प्राप्ति का पात्र बन जाए अथवा ठीक प्रकार से समाज–सेवक और तपस्वी बन जाए, ऐसा कदापि संभव नहीं। यह तथ्य मेरी समझ में आ रहा है और ज्यों–ज्यों मेरी समझ में आता जा रहा है, मैं आर्ष प्रणाली को लागू करता जा रहा हूँ। मुझे कोई चिन्ता नहीं है कि एक व्यक्ति को यह समझ में नहीं आ रहा है और वह यहाँ पर नहीं टिकता है, वह वापस घर चला जायेगा।

(80) आज की शिक्षा राष्ट्रीय, सामाजिक संस्थागत दायित्वों की उपेक्षा करती है।

आज देश के अंदर मौजूद सैकड़ों, लाखों ब्रह्मचारी गुरूकुल में पढ़ते है लेकिन जैसी स्कूलों के विद्यार्थियों की स्थिति है, ठीक उसी प्रकार थोड़ी बहुत मिलती–जुलती गुरूकुल के ब्रह्मचारियों की स्थिति है और कुछ ज्यादा अच्छी स्थिति नहीं है। ***राष्ट्रीय भावना, सामाजिक सेवा की भावना, व्यक्तिगत जीवन के विकास के कार्यों को करना और संस्थागत कार्यों को करना, अपने दायित्वों को समझना आदि इस तरह की प्रवृत्ति छात्रों की नहीं है।*** डंडा दिखाकर, भय दिखाकर, नियम बनाकर के, दंड देकर के और प्रायश्चित्त कराके भले ही कोई उस विद्यार्थी से काम करा ले लेकिन अपनी इच्छा से कोई काम नहीं करता है, जैसे कि माँ किया करती है।

भूमिका–अपने पैरों पर खड़े हों, अपने काम करें, आत्म निर्भर बनें और :–

(81) स्वावलंबी बनकर 'नींव' मजबूत करें।

जो ब्रह्मचारी यहाँ आश्रम में हैं। उनको सभी कुछ बना बनाया मिल रहा है। न दूध गर्म करना पड़ रहा है, न दूध लाना पड़ रहा है, न पात्र साफ करना पड़ रहा है। गए, दूध गिलास में डाला और पी गए, छुट्टी। यही स्थिति शहरी विद्यार्थी की है। हमको तो लकड़ियाँ फाड़नी पड़ती थी। यदि लकड़ी

नहीं होती थी तो हमको गोबर के कंडों में रोटियाँ बनानी पड़ती थीं। हमारी आँखें लाल हो जाया करती थीं। ये मैं आपको दिखाना चाहता हूँ कि किसी के मन में यह अभिमान न आ जाए कि हम बहुत–बड़ा काम कर रहे हैं, बड़ी तपस्या कर रहे हैं। शारीरिक तपस्या से बढ़कर और कोई तपस्या नहीं होती। स्वावलंबी बनना नींव है सबकी।

भूमिका–व्यक्तिगत कर्त्तव्यों का पाठ :–

(82) व्यक्तिगत कार्यों को ठीक से करना सीखो।

लोग प्रायः अपने व्यक्तिगत कार्यों को ठीक से नहीं कर पाते हैं। जैसे उनको कपड़े पहनना नहीं आता। कपड़े धोना नहीं आता है। गंदे कपड़े पहनते हैं। तो वे पढ़–लिखकर क्या करेंगे ?

सभ्यता और सरलता एक अलग चीज है, सफाई एक अलग चीज है। आपके पास कपड़ा चाहे सूती हो पर वह साफ हो। कपड़े नहीं धोना, धूल मिट्टी लगे रहना, कपड़े फटे रहना कोई तपस्या नहीं है। कई ब्रह्मचारियों और विद्यार्थियों को कपड़े सुखाना तक नहीं आता है। उन कपड़ों से पानी टप टप टपकता रहता है। लगता नहीं कि उसे निचोड़ा है। यह सब देखकर विचार आता है कि ऐसे व्यक्ति को कोई क्यों पढ़ाये ? जो दर्शन पढ़ने जा रहे हैं, जो योग पढ़ने जा रहे हैं, जिन्हें दुनिया ऋषि मानती है, जो शाब्दिक विद्वान हो गए हैं लेकिन जिन्हें तौलिया साफ करना नहीं आता है, जिन्हें कपड़े तक सुखाना नहीं आता है। इस स्थिति में उनका पढ़ा–लिखा सब कुछ व्यर्थ ही है।

ऐसा विद्यार्थी सभ्य समाज में जायेगा तो उसका दो कौड़ी का मोल हो जायेगा। सभी को साफ–सफाई से रहना चाहिए। आप अपने शौचालय का प्रयोग करते हैं। नये ब्रह्मचारियों को प्रायः बोला जाता है, हाँ, जी शौचालय को साफ किये हुए सप्ताह भर हो गया है, वह पीला हो गया है इसलिए सफाई करें। हमें यह कहने की क्या जरूरत है ? आधुनिक विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रावासी विद्यार्थियों की स्थिति तो बहुत बुरी है। घर में आपके शौचालय होता था। क्या वह ऐसा गंदा रहता था ? आपकी माँ सुबह धोया करती थी, शाम को भी धोया करती थी, डिटर्जेन्ट लगाती थी, हमेशा शौचालय को साफ रखती थी। ये कोई तपस्या थोड़े ही है।

अगर शौचालय गंदा हो रहा है, तौलिया गंदा हो रहा है, पात्र गंदे हो रहे हैं, टेढ़ा–मेढ़ा आसन है, टेढ़ी–मेढ़ी पुस्तकें हैं, सब कुछ टेढ़ा–मेढ़ा है तो

पढ़ाई के लिए इतनी क्या भाग–दौड़ कर रहे हैं ? इन पुस्तकों को पढ़ने से क्या लाभ हो जायेगा ? *पढ़ाई में दो वर्ष लगेंगे और दर्शनाचार्य की डिग्री मिल जाएगी लेकिन आता जाता कुछ नहीं है। व्यवहार की बात कुछ भी नहीं आती। दूसरों के साथ में बोला कैसा जाए और व्यवहार कैसा किया जाए, यह ही पता नहीं है। संस्थागत, सामाजिक दायित्वों को पूरा करने की बात तो दूर रही।* प्रथम श्रेणी का व्यक्ति वह है जो सामाजिक कल्याणकारी कार्यों को सभी के लाभ के लिए अपनी इच्छा से करे।

(83) जीवन में वस्तुओं को व्यवस्थित रखना सीख लो।

आपने कितने सूत्र याद किये हैं, कितनों की व्याख्या कर सकते हैं, कैसा पढ़ाना आता है, कितने अंक प्राप्त हुए हैं, कितने अच्छे प्रवचन देते हैं, कितने अच्छे लेख लिखते हैं, अध्ययन में कैसी प्रवृत्ति बनती है, कैसा आपका व्यवहार है, ध्यान में आपकी स्थिति कैसी बनती है ? बाहर से आने वाला व्यक्ति आपके कमरे में आएगा, तो वहाँ की स्थिति देख कर इन सब बातों का पता लगा लेगा। बाहरी व्यक्ति अध्यात्मिक दृष्टिकोण से मूर्ख हो सकता है, अज्ञानी हो सकता है, लेकिन वह लौकिक और भौतिक दृष्टिकोण से ठीक प्रकार से व्यवस्थित करके अपना जीवन चलाता है। ये हमें सीखना चाहिए। हम आध्यात्मिक भी अच्छे बनें और लौकिक भी अच्छे बनें।

भूमिका–माता–पिता पर निर्भर रहने वाले भारतीय विद्यार्थी माता–पिता के धन से पढ़कर यदि धन कमाने में असफल हो जायें तो फिर उनकी गोद में जा बैठते हैं। अपने पैरों के बल पर विद्या अध्ययन काल में खड़े होने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि चौबीसों घन्टे पढ़ाई नहीं की जा सकती। इसलिए आचार्यवर स्वावलंबन का पाठ पढ़ाने हेतु कहते हैं :–

(84) पार्ट टाइम काम करना चाहिए।

विदेश में रहने वाले व्यक्ति पार्ट टाइम जॉब भी करते हैं और पार्ट टाइम स्टडी (पढ़ाई) करते हैं। विदेश में मैंने यह देखा है। अपने देश में भी कुछ थोड़े व्यक्ति हैं जो रात को पढ़ते हैं और सुबह ड्यूटी करते हैं। सुबह पढ़ाई करते हैं तो रात में छह से आठ घण्टे ड्यूटी करते हैं। इस प्रकार वे काम भी करते हैं और पढ़ाई भी करते हैं। हमारे देश के अधिकाँश विद्यार्थी और

ब्रह्मचारी न तो कमाई करते हैं, न घर और संस्था का काम करते हैं और न ही आदर्श आचरण करते हैं।

भूमिका–सेवा व्यक्ति की संकुचित वृत्ति को खत्म कर आत्मा को पवित्र करती है। सेवा दूसरों को सबसे ज्यादा आनंद पहुँचाती है। इसलिए सेवा के प्रभाव से व्यक्ति प्रतिष्ठित हो जाता है। कई बार उससे प्रेरित होकर लोग उसकी और दूसरों की सेवा करना आरम्भ कर समाज निर्माण की शुरूआत करते हैं। इस विषय में आचार्य–वचन हैं :–

(85) अपनी इच्छा से संस्थागत कार्यों को करें।

उदाहरण दे रहा हूँ कि हमारे विचार कैसे होने चाहिए। हमारी संस्था में बाहर से व्यक्ति आते हैं। वह ऊपर आएगा तो उसको आते ही सबसे पहले पानी का घड़ा और वाटर कूलर दिखाई देगा। अब अगर वाटर कूलर के अंदर चिकना–चिकना दाग लगा हुआ है, मिट्टी लगी हुई है, सफेद, नीला, पीला धब्बा लगा हुआ है, अंदर सफाई नहीं है, पानी ठंडा नहीं है, भरा नहीं है, चिकनाई पड़ रही है, निरंतर काई जमते–जमते वह हरा–काला हो गया है, तो बाहर के लोग उस पानी को नहीं पियेंगे। वाटर कूलर की स्थिति देखकर उनके मन में दुःख और द्वेष उपजेगा। एक आदमी शरबत पिलाने के लिए गिलास लाया। शरबत घोला और चम्मच वहीं पर रख दी। टूँटी के अंदर दातुन फंसी है, वहाँ वैसी की वैसी पड़ी है। यह स्थिति ठीक नहीं है।

विद्यार्थियों को अपनी माताओं और बहनों से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। रोजाना माताएँ घड़े को साफ करती हैं। यहाँ पर ये स्थिति न हो कि कहीं घड़े की सफेदी निकल रही है, तो कहीं कहीं से वो घिस रहा है, तो कहीं उसका रंग उड़ रहा है। बाल्टी को देखो तो उसके नीचे कूड़ा–कचरा जमा है, दाग लगे हैं। कोई सभ्य आदमी इस प्रकार से नहीं करता है, इससे उसको घृणा होती है।

मैं तो उस व्यक्ति को अच्छा मानता हूँ, श्रेष्ठ मानता हूँ जो अपनी इच्छा से स्वयं घंटा दो घंटा लगाकर के काम करे। इससे आत्मतृप्ति मिलती है। मैं निश्चित कहता हूँ कि ***आप अपनी इच्छा से किसी सामाजिक कार्य को करेंगे, कल्याणकारी कार्य को करेंगे और उपासना में बैठा करेंगे तो आपकी उपासना का स्तर अवश्य ऊँचा होगा।***

बार–बार मैंने कहा है कि सामान्य उत्तरदायित्वों को जो आपने लिया नहीं और हमने दिया नहीं है, उनको सबसे पहले लें। जैसे कि घंटी लग गई

है और दो मिनट पहले कक्षा में आ गए। अगर अंदर कमरे में कूड़ा–कचरा पड़ा है, झाड़–झंखाड़ पड़ा है, कोई पत्ते पड़े हैं तो चुपचाप से अपनी पुस्तकें एक जगह रखी और झाड़ू लेकर सफाई कर दी। बस, हो गया काम, छुट्टी आपकी। ये काम हो गया और आप ऊपर गए तो देखा कि बाल्टी में पानी भरा हुआ है, उसको नीचे डाल दिया तो ये काम हो गया परोपकार का। आधा घंटा लगा के बाल्टी की सफाई कर दी। अपनी इच्छा से कभी आधा घंटा लगाकर के कोई ऊपर पहली मंजिल का और नीचे का शौचालय साफ करता हो, ऐसा कोई मुझे तो अपनी संस्था में दिखाई नहीं दिया। कोई चुपके से करता हो तो मुझे पता नहीं। मैं आठ, दस, पन्द्रह दिन में या महीने में जब कोई किसी का पर्याय (ड्यूटी) लगाऊंगा या उत्सव आएगा या कोई व्यक्ति विशेष आयेंगे या कोई घटना घटेगी या दस–पन्द्रह दिन में हम कहेंगे कि – हाँ भाई, अब सफाई करो तो सफाई होती है। सब के द्वारा रोजाना क्यों नहीं होती है ये सफाई? इसका मतलब है कि उन्हें सामान्य प्राथमिक शिक्षा प्राप्त नहीं है। धरातल में बैठना नहीं आता है, खड़ा होना नहीं आता, चलना नहीं आता है। सब की बात नहीं कर रहा हूँ और सब स्तर में नहीं कह रहा हूँ लेकिन जितनी पात्रता होनी चाहिए, उतनी पात्रता सब के अन्दर नहीं है।

हम जाते हैं वानप्रस्थ आश्रम के अंदर। इन माताओं को देखकर के आओ, ये कैसे रहती हैं। ये माताएँ आपको गुरू मानती हैं। कितनी कम पढ़ी हैं। कई माताएँ बिलकुल नहीं पढ़ी हैं, लो देखो उनको। इनका कमरा कैसा मिलेगा, बिस्तर कैसा मिलेगा, पात्र कैसे मिलेंगे, शौचालय को देखकर आओ, स्नानागार को देखकर आओ, मटके को देखकर आओ, सीखो इनसे। ये प्राथमिक चीजें हैं।

अपने मन में कल्पना कीजिए कि मनमोहन सिंह जी यहाँ आ जाएँ या नरेन्द्र मोदी जी आ जाएँ कि आचार्य ज्ञानेश्वर जी आपका नाम बहुत सुना था,आपके विद्यालय को देखना है और आपके कमरे में जा घुसें तो वह क्या देखेंगे। व्यक्ति को इस प्रकार विचार करना चाहिए। ये मुख्य बातें हैं।

ध्यान रहे कि ***आप बाहर से व्यवस्थित हो तो आपका मन भी व्यवस्थित बनता है, प्रसन्न होता है, प्रोत्साहन मिलता है।*** यदि बाहर से अव्यवस्थित हो तो हमारा मन भी अव्यवस्थित रहता है। ये मैंने आपको अपनी ओर से कुछ व्यावहारिक बातें बताई।

मैं आपको और व्यावहारिक बातें बताना चाहूँगा। मैं कईयों को ऐसे भी देखता हूँ, जिनको व्यावहारिक ज्ञान के विषय में बहुत कम संस्कार हैं। एक उदाहरण दे रहा हूँ– कहीं से भी कोई वस्तु उठाई, उसका अपने लिये प्रयोग किया, किसी और के लिये वस्तु किसी और को दी, तीसरे को दी, चौथे को दी। ***अब जहाँ से वस्तु उठाई गई है वहाँ पर वस्तु नहीं पहुँची है, तो उत्तरदायित्व से हीन होकर हम दोषी बन जाते हैं। ये त्रुटि संस्थाओं में इतनी अधिक मात्रा में होती है कि इसकी कोई कल्पना ही नहीं है।***

हम 13 व्यक्ति दिन में पचासों वस्तुओं को उठाकर के यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ करते हैं। और उनको समुचित स्थान के ऊपर ठीक प्रकार से रखते नहीं हैं। अपने दायित्व को समझते नहीं हैं। ऐसी त्रुटियाँ प्रायः सबसे होती हैं। किसी से कम, किसी से अधिक। शीघ्रता में, किसी कार्य विशेष के आ जाने से गलती होना एक अलग बात है, लेकिन व्यक्ति का स्वभाव ऐसा बना हुआ है कि वह जो वस्तु जहाँ से उठाता है, वहाँ उस वस्तु को प्रायः रखता नहीं है। अथवा जहाँ जाकर उस वस्तु को देने का, रखने का, पहुँचाने का उसका दायित्व है, वहां उसको व्यक्ति पहुँचा नहीं पाता। ये मैंने आपको सामान्य बात बताई।

इसी से सम्बन्धित एक बात और बताई थी कि ***कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो व्यक्ति को दायित्व न सौंपे होने पर भी उसका करने का दायित्व हो जाता है। काम बिगड़ने के बाद में इसकी अनुभूति होती है।*** उदाहरण दे रहा हूँ – खूब जोर से वर्षा हो गई। आप या तो पढ़ रहे हैं या वर्षा को देख रहे हैं या विश्राम कर रहे हैं या अपना कोई और क्रियाकलाप कर रहे हैं। आप नीचे आये ही नहीं। नीचे खिड़कियाँ खुली हैं। उधर से खूब जोर से वर्षा आई और कमरे में पानी आ गया। सतरंगी (दरी) भीग गई, कालीन भीग गया। आप सुबह आये तो देखकर के आपके मन में कुछ दुःख होता है, पीड़ा होती है, कष्ट होता है। आप सोचते हैं कि ये बहुत गलत काम हो गया। ये सामान भीगने नहीं चाहिये थे । यदि आपके मन में इस प्रकार की अनुभूति होती है तो समझना चाहिये कि हमारा उस चीज को देखने का और उसकी सुरक्षा का कर्त्तव्य था। हमारा कर्त्तव्य था कि ये काम ऐसा न हो, बिगड़े नहीं, हानि न हो।

क्या आपको आसपास, ऊपर–नीचे, दायें–बायें देखकर के ऐसा लगता है कि वस्तुयें खराब हो रही हैं, बिगड़ रही हैं। वे व्यवस्थित नहीं रखी हुई हैं, टूट–फूट रही हैं, गल रही हैं, सड़ रही हैं, बेकार हो रही हैं, अस्त व्यस्त पड़ी हैं, उनका उपयोग नहीं हो रहा है। आप ये अनुभूति करते हैं तो समझना चाहिये कि आपके अंदर सामाजिक कर्त्तव्य की भावना है। ये व्यक्तिगत कर्त्तव्य नहीं है।

समय पर उठना, समय पर ध्यान, समय पर व्यायाम, समय पर भोजन, समय पर निदिध्यासन, समय पर पाठ, आप सब कुछ ठीक करते हैं। इस प्रकार आपके अंदर व्यक्तिगत कोई दोष नहीं है, लेकिन व्यक्तिगत दोषों से रहित होने पर व्यक्ति सामाजिक, संस्थागत और राष्ट्रीय कर्त्तव्यों से बच नहीं सकता। हमें ***जहाँ व्यक्तिगत निर्माण करना है, वहाँ समाज का, राष्ट्र का भी निर्माण करना है। हमें व्यवस्था सम्बन्धी, प्रबंध सम्बन्धी ज्ञान–विज्ञान प्राप्त होना चाहिये।*** हम सावधानी रखेंगे फिर भी नुकसान होगा, हानि होगी। बच नहीं सकते हम।

अपनी पढ़ाई, भोजन, विश्राम, व्यायाम, ध्यान सब कुछ छोड़कर केवल मात्र इस काम में लगे रहें कि किसी का नुकसान न हो, फिर भी नुकसान होगा। ये बात भी सत्य है कि होगा ही नुकसान। लेकिन ऐसा नुकसान न हो जो दिल को चुभे, जिसको देखकर के मन में ज्यादा दुःख हो, ग्लानि हो, पश्चाताप् हो। मैं आपको एक उदाहरण दे रहा हूँ । आपको मैं पहले ये बताना चाहता हूँ कि मुझको किसी वस्तु के प्रति राग नहीं है। मेरे को वस्तु के नष्ट होने का दुःख नहीं होता है। दिमाग में इस बात को रख लेना। उस वस्तु के नाश होने में मेरा कोई विनाश हो रहा है, दुःख हो रहा है, पीड़ा हो रही है, ऐसा कुछ नहीं है। वस्तुओं के साथ मेरा स्व–स्वामी सम्बन्ध अटैचमेंट नहीं है। लेकिन वह संस्थागत वस्तु है,राष्ट्र की वस्तु है, उसका नुकसान नहीं होना चाहिये।

आप कभी छत पर घूमने जाते हैं। छत के ऊपर देखा है, कुची पड़ी है। जिसे पुताई वाला ब्रश कहते हैं। उसे एक बार खरीद लाए। एक बार कमरे की पुताई की। उसको मोच करके उसके ऊपर लक्कड़ और पत्थर रख दिया। उसके ऊपर पाइप डाल दी, बाटल डाल दी, पत्थर रख दिया।

फिर ऊपर धूप, फिर होगी वर्षा। वह सड़ जायेगा। आप बात को ध्यान से सुनना। मतलब दस रुपये की कोई कीमत नहीं है। लेकिन ये बातें चुभती हैं। वह आज दस रुपये की चीज को अपने सामने सड़ते हुए देख रहा है और उसके मन में पश्चाताप् नहीं है, दु:ख नहीं है। वह व्यक्ति आगे चलकर के इतना आलसी, प्रमादी बन जायेगा कि इसके सामने लाखों रुपये की वस्तुयें खराब होंगी तो भी वह ध्यान नहीं देगा।

विदेशों के अंदर ऐसी परिस्थितियाँ थीं और हैं कि बिना स्त्री के काम किये परिवार चलता ही नहीं। जब तक घर के अंदर एक सप्ताह में हजार पौंड, डेढ़ हजार पौंड, दो हजार पौंड नहीं आएँगे तब तक उनका खर्च चलेगा नहीं। पेट्रोल है, बिजली है, पानी है पता नहीं कितना खर्च है। बिना खर्चे के तो जीवन चल ही नहीं सकता। एक आदमी रोजाना कितना कमायेगा? सौ पौंड, डेढ़ सौ पौंड और भी चाहिए न पैसा। खाने में चाहिए, पीने में चाहिए। इसलिए पति–पत्नी दोनों काम में लगते हैं। उनको गाड़ियाँ भी चाहिए। दुनियाभर का खर्चा है। इसलिए विदेशों के अंदर 89 प्रतिशत, 90 प्रतिशत, 95 प्रतिशत लेडीज और जेन्ट्स दोनों काम करते हैं। युवा वर्ग (यंगस्टर्स) भी काम करते हैं, चाहे भारतीय ही क्यों न हो। यही स्थिति कुछ अंशों में आज भारत के अंदर होने जा रही है।

भूमिका – आचार्यवर अपने विदेश–प्रवास के अनुभवों को बाँट रहे हैं :–

(86) पश्चिमी देशों में बहुत साफ–सफाई और सज्जा है।

इंग्लैंड जाकर या अमेरिका जाकर वहाँ की स्थिति देखी है। वहाँ पर ऐसा फर्श नहीं होता है जैसा यहाँ पर दिखाई दे रहा है। सड़क भी बढ़िया होती है, क्लीन चिकनी। मुझे तो इस देश से प्रेम है। हम साफ सफाई रखने का प्रयास करते हैं लेकिन वहाँ की चमक–दमक को देखते हैं तो लगता है कि यहाँ तो कूड़ा–कचरा है। वहाँ इतने मोटे–मोटे बढ़िया कालीन शौचालय में बिछे होते हैं, जो आपने यहाँ देखे नहीं होंगे। वे शौचालय में कितनी सफाई रखते हैं। वहाँ सीढ़ियों के कालीन मोटे–मोटे होते हैं। हम आश्रम बनाने वाले हैं, विदेश से लोग यहाँ आएंगे। इसी तरह से अमेरिका वाले तो यहाँ आते ही रहते हैं। आयेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि कैसे रहतें हैं हम ?

जीवन में स्वावलंबन बहुत बड़ी उपलब्धि है। उत्तरदायित्वों का निर्वहन और सामाजिक कर्त्तव्यों को करने की भावना, ये चीजें आदर्श गुरू के मार्गदर्शन में, आदर्श संस्थान में, आदर्श विधि–विधान में, नियमों में और अनुशासन में रहकर व्यक्ति सीखता है। हमें सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति के कार्य करना है। इसके लिए हमें सामाजिक कल्याणकारी कार्यों को करवाने की योग्यता बनानी पड़ेगी। योग्यता तब बनेगी जब हम खुद कार्य को निष्ठापूर्वक करेंगे।

(87) अच्छी गुणवत्ता के फलों और सब्जियों का ज्ञान होना चाहिए।

विद्यार्थी को रोटियाँ बनाना आना चाहिए, सब्जी का ज्ञान होना चाहिए। चाहे सब्जी बनानी नहीं आती हो, तो कम–से–कम पता तो रहे कि सब्जी कैसी बनी है। अच्छे स्तर की सब्जी बनी है, मध्यम स्तर की बनी है या फिर उच्चतम स्तर की बनी है। मैंने तेईस प्रांतों की रोटियाँ खाई हैं। अलग–अलग प्रांत में सब्जी अलग–अलग, रोटी अलग–अलग प्रकार की बनती है। उत्तरी राजस्थान में कुछ और बनाएँगे और पूर्व में कुछ और बनाएँगे। आपके लिए यह भी अनिवार्य चीज है कि आपको फलों का ज्ञान होना चाहिए। अच्छी गुणवत्ता के आम का, केले का, संतरे का, मौसंबी का, अनार का, सेब का, चीकू का लक्षण क्या है ? लोगों को यह जानने का इतना अवसर मिलता है, मगर वे इस पर बिलकुल ध्यान नहीं देते हैं। ऐसे व्यक्ति असफल रहेंगे। ***दुकानदार जैसा झोली में डालेगा, वे वैसा ही रख लेंगे।*** सब्जी में बढ़िया तूरी कैसी होती है? बढ़िया भिंडी, आलू, टमाटर, गोभी कैसी होती है? इसका हमें ज्ञान होना चाहिए। यह जनरल नॉलेज आवश्यक है।

(88) निष्काम भाव से समाज सेवा करें।

याद रखें कि हम समाज, राष्ट्र के हैं। जीवन को निष्काम भावना से लगाने का प्रयास करो। आज मैं 18 घंटे काम करता हूँ, उपाध्याय जी भी। हम पैसा नही लेते हैं। ये निष्काम भावना है। आप प्रारंभ में कुछ तपस्या करेंगे तो यह भावना आयेगी। आप पड़ोस में रहने वाले व्यक्ति की, फिर संस्था में रहने वाले व्यक्ति की, फिर समाज में रहने वाले व्यक्ति की सेवा करें। दूसरों के लिए जब कार्यों को करेंगे तो मन में उत्साह की भावना बढ़ेगी। जीवन में आनन्द रहेगा और आपको शर्म नहीं आएगी।

भूमिका – विद्या अध्ययन के काल में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए। आचार्यवर के मत में :–

(89) निर्माण के काल में परिवार से अलग होकर लक्ष्य प्राप्ति का अभ्यास करना चाहिए।

यथार्थ रूप में व्यक्ति प्रायः सत्य–असत्य का निर्णय निकाल नहीं पाता है। जब तक व्यक्ति सत्य–असत्य का पूर्ण निर्णय निकाल नहीं ले, तब तक आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति की बात तो दूर रही, व्यक्ति उस दिशा में अग्रसर भी नहीं होता है।

जो लोग गृह त्याग कर इस आश्रम में रहने को आये हैं, उनकी माँ भी होगी, पिता भी होगा, भाई भी होगा, बहिन भी होगी। मैं प्रश्न करता हूँ – क्या आप अपनी माँ के साथ, पिता के साथ, भाई के साथ, बहिन के साथ, सज्जनों के साथ, उन व्यक्तियों के साथ संपर्क बनाएँ तो यह संपर्क बनाना, उनके संपर्क में रहना, उनसे कुशलक्षेम का व्यवहार बनाना, उनसे मिलना–जुलना, पत्र व्यवहार करना, जाना–आना आदि क्रियाकलाप ईश्वर की प्राप्ति के लक्ष्य में साधक हैं अथवा बाधक हैं ?

ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि इस आश्रम में रहने वाले विद्यार्थियों का अपनी माँ, पिता और भाई के साथ में बहुत राग नहीं था इसीलिए तो वे घर–बार छोड़–छाड़ के यहाँ पढ़ने आ गए। एक प्रकार से उनको मार के आ गए। परिवार से विमुख होना, छोड़ देना, उनसे बोलना नहीं, पत्र व्यवहार नहीं करना, मिलने की इच्छा न रखना, उनको आने नहीं देना आदि व्यवहारों से यह तो स्पष्ट है कि हमारे मन में उनके प्रति राग के संस्कार न्यून हैं, दबे हुए हैं लेकिन उन लोगों के मन में हमारे प्रति राग के संस्कार जरूर बने हुए हैं। इसलिए वे जब हमसे मिलते हैं तो राग से युक्त होकर बातें करते हैं। जिनके साथ हमारा तादात्म्य संबंध बना हुआ है। उनके मोहित होने पर व्यक्ति उनके मोह के कारण, अपने अन्दर ज्ञान–विज्ञान की कमी होने के कारण और विवेक वैराग्य की निर्बलता या न्यूनता होने के कारण उनके राग से और उनके मोह से प्रभावित होकर के अपने विवेक के स्तर को गिरा लेता है। और वो व्यक्ति दुःखी हो जाता है।

हो सकता है कि किसी की अच्छी परिपक्व स्थिति हो लेकिन मैं ऐसी संभावना करता हूँ कि उच्च स्तर के विवेक वैराग्य को प्राप्त किये बिना,

प्रसंख्यान ज्ञान अर्थात् विवेक ख्याति को प्राप्त किए बिना यदि आपके सामने आपकी माता या पिता भूखा, प्यासा या रोगग्रस्त, मरता हुआ, तड़पता हुआ, विलपता हुआ, बिलबिलाता हुआ, गिड़गिड़ाता हुआ आ जाए, अपमानित हुआ आ जाए, अत्याचार उस पर हुआ हो उस स्थिति में आ जाए, हाथ पाँव टूटा हुआ आ जाए, दुःखी रूप में आ जाए, असहाय आ जाए या किसी भी बुरी परिस्थिति में नजर आ जाए तो आपमें से शायद ही कोई व्यक्ति होगा जिसका आज का जो विवेक का स्तर है, ज्ञान–विज्ञान का स्तर है, वो खोये नहीं। ऐसी कम संभावना मुझे लगती है।

कल्पना करो – आपकी माँ बाजार में सब्जी लेने गई और वो गिर गई और दोनों घुटने के ऊपर ट्रक चल पड़ा जिससे उसको दोनों टांगे कटवानी पड़ी। आप लोग ये सोच रहे हैं कि ये कैसा उदाहरण दिया। लेकिन ये बिल्कुल संभव है। ये तो रोज होता रहता है। प्रतिदिन महिलाओं के साथ दुर्घटनाएँ घट रही हैं। वे भी किसी न किसी की माँ होती हैं। अब यहाँ विद्यालय में पिता आए। वह पड़ोसी, मित्र, साथी आदि के साथ आए। और माँ की फोटो दिखाकर कहे कि :–

''तुम्हारी माँ बिलबिला रही है, रो रही है, उसकी दोनों टाँगे टूट गई है, दोनों टाँगे कटवाई हैं और तू इतना क्रूर हो गया है, इतना निष्ठुर हो गया है कि वैराग्य की बात करता है। तू माँ की सेवा तो कर नहीं पा रहा है, माँ को तो प्राप्त कर नहीं पा रहा है तो ईश्वर की सेवा क्या करेगा। अभी तू छह महीने लगा दे माँ की सेवा में। विवेक–वैराग्य की प्राप्ति हेतु पूरा जीवन मिला है। तेरी माँ चिल्ला रही है– मेरा बेटा, मेरा बेटा, एक बार मेरे बेटे का दर्शन करा दो, मेरे प्राण निकल जाएँगे, मेरे प्राण अटके हैं। क्रूर, राक्षस एक बार माँ के पास जाने में, प्राण निकालने में तेरे को क्या लगता है। एक बार जाकर माँ के प्राण निकाल दे, प्राण निकल जाएँगे तो वह मर जाएगी तो फिर वापस आश्रम में आ जाना। क्यों उसको तड़पा रहा है ?''

जब मैं गुरूकुल कालवा में था। वहाँ एक ब्रह्मचारी था। उसे बड़ा अभिमान था। उसने अपना शरीर बनाया। उसने साल भर में अपना करीब बीस किलो वजन बढ़ा लिया होगा। वह विद्वान था, उसने स्वास्थ्य भी अच्छा बनाया। साल भर में लोहे की जंजीर भी तोड़ी, सीने पर पत्थर भी तुड़वाए, जीप भी रोकी, सरिया भी मुड़वाया। आँखों से सरिया मोड़ते हैं, गले से मोड़ते

हैं, जीप रोकते हैं, पत्थर सीने के ऊपर रखकर तुड़वाते हैं, सीने के ऊपर से ट्रैक्टर चलवाते हैं। उसने भी ये काम किये। वह मेरे साथ डेढ़ साल रहा।

उससे भूल ये हुई कि जब उसका स्वास्थ्य अच्छा बन गया तो प्रदर्शन करने लग गया। उसकी माँ भी मिलने आने लगी, बाप भी आने लगा। माँ जब भी आती, भर भर के घी के डिब्बे लाती। मैंने कहा– फँसेगा ये। दो–चार–छह महीने यह चलता रहा। कुछ दिनों बाद उसके पिता को रोग हो गया। पिता को हॉस्पिटल में लेकर गए और घर से उसको संदेश आया कि, तेरे पिता को रोग हो गया है और वे बहुत दुःखी हैं और वे चाहते हैं कि तुम उनसे एक बार आकर मिल लो। उसने कहा–नहीं, मैं नहीं जाऊँगा, मेरे को आचार्य जी की अनुमति नहीं है। उन्होंने कहा – अरे, तू इतनी जगह जाता है, एक घंटे के लिए घर जाकर मिल ले और ये मान ले कि तू किसी और व्यक्ति के घर में जा रहा है। यह सुनकर वह ढीला हुआ। उसने आचार्य जी से अनुमति ली और घर की ओर चल दिया। लोगों ने उसे बहुतेरा समझाया कि देखो, आपका घर जाना ठीक नहीं है। उसने कहा– नहीं, एक बार मिल लेता हूँ। बस, जाते–जाते मिल लूँ, नमस्ते कर लूँ, हाल–चाल पूछ लूँगा, फिर लौट कर वापस आ जाऊंगा। उसने जाकर देखा कि पिता हॉस्पिटल में चिकित्सा करा रहे थे। उसके आते ही पिता रो पड़े, माँ रो पड़ी, भाई–बहिन, चाचा–ताऊ सभी रो पड़े। वे बोले–तू कितना क्रूर हो गया है। तेरा बाप अस्पताल में पड़ा है और तू है कि ध्यान नहीं दे रहा है। अरे, कम–से–कम एक दिन तो रुक जा। कल चले जाना। अब तो तुझे बस मिलेगी नहीं। देरी तो हो ही गई है। बस रात को पहुँचेगी। सुनकर वह रुक गया। सुबह हो गई। सुबह उससे कहा गया–तेरा कोई भाई तो है नहीं, सब कुछ तुझे ही देखना है, थोड़ा रुक जा। ऐसा करते–करते पाँच–सात–दस दिन निकल गये। फिर वह घर में ही रह गया। वो वापस आया नहीं आज तक।

इन परिस्थितियों के ऊपर निदिध्यासन करो। यहां विद्यालय में रहने के दौरान आपको दूरभाष मिलेगा, पत्र मिलेगा, तार आयेगा, संदेश मिलेगा कि तुम्हारा बाप मर गया है, माँ मर गई है। हम तो इस तरह की सूचना किसी को नहीं देते हैं। किसी विद्यार्थी की माँ भी मरी है, बाप भी मरा है, भाई भी मरा है, दादा भी मरा है लेकिन हमने किसी विद्यार्थी को इसकी कोई सूचना नहीं दी। बाहरी सूचना मिली होगी आपको, लेकिन यहाँ तो हमनें सूचना नहीं दी।

आपके विद्यालय में रहते हुए यदि आपके पिता जी, माता जी का देहान्त हो जायेगा तो हम तो सूचना नहीं देंगे। हो सकता है कि अभी भी कोई मर गया हो। ऐसा घटित होने पर यहाँ विद्यालय में आपका भाई आयेगा और कहेगा कि – क्रूर, नालायक ! जिस माँ ने तुझे पैदा किया, खिलाया–पिलाया और यहां आकर तू ऐसा बन गया, क्या इतना ऊँचा योगी बन गया कि अपनी माँ को ही भूल गया। मर गई तेरी माँ और तू आया नहीं।

आपको मन के अंदर लगेगा नहीं कि मेरा मन कितना निष्ठुर हो गया है। निष्ठुर लौकिक शब्द है। ये शब्द आध्यात्मिक आदमियों के लिए होता ही नहीं है। याद रखिए कि जिसकी माँ मर जाएगी, पिता मर जाएगा और वह दुःखी होगा तो समझ लेना कि वह व्यक्ति परिपक्व नहीं है। उसके अंदर वैराग्य की ऊँची स्थिति नहीं बनी है। आप अपने मन के अंदर इस प्रकार के विषयों के ऊपर निदिध्यासन किया करें।

ध्यान दें कि ***हमारे मन में, हमारी आत्मा में, हमारी बुद्धि में जन्म जन्मान्तर के जो राग–द्वेष के संस्कार बैठे हुए हैं, अज्ञान के संस्कार जमे हुए हैं, उन संस्कारों के खिलाफ हमारी माँ कुछ मदद नहीं कर सकती है। हमें अपने पास में रखकर वह उन अविद्याजनित संस्कारों को बढ़ाएगी ही लेकिन उसको कम नहीं करेगी।*** हाँ, किसी की माँ योगिनी है तो यह अलग बात है। माँ अगर योगिनी होगी तो राग नहीं करेगी, राग करेगी तो योगिनी नहीं होगी। जो राग करेगी वो तो रागी बनाएगी।

हमारे जन्म जन्मान्तर के अज्ञान के जो संस्कार हैं, उनको नष्ट करने में हमारी माँ, हमारे पिता, हमारे भाई, बहिन, हमारा धन, संपत्ति आदि कोई चीज किसी काम की नहीं है। जैसे हाथी हमारे काम का नहीं है। कोई आपसे कहे कि– लो जी, आप तो बड़े त्यागी हैं, हम आपको हाथी ईनाम में दे रहे हैं। उसकी बात सुनकर क्या आप उससे हाथी लेकर आ जायेंगे। बताओ, हाथी होना अपने क्या काम का। यहाँ आर्यवन में जितनी गायें एक दिन में घास खाती हैं, उतना तो वह एक दिन में खा जाएगा। उसको एक दिन में पता नहीं कितने मन भूसा और घास चाहिए। ऐसा ही आध्यात्मिक क्षेत्र में लागू होता है।

ये जो माँ है, पिता है, वे आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी काम के नहीं हैं। इसका मतलब ये नहीं कि हम उनके उपकारों के प्रति कृतघ्न

हो गए हैं। हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं लेकिन अब हम जिस मार्ग में लगे हुए हैं, उस लक्ष्य में हमारे माता–पिता कोई साधन नहीं हैं। जैसे मिल्ट्री मैन देश की रक्षा कर रहा है, तो वो अपनी पत्नी को संभालेगा, बच्चों को संभालेगा, माँ को संभालेगा या देश की सुरक्षा करेगा ? अपने कर्त्तव्य की पूर्ति करना मुख्य होता है। इसी प्रकार ***जो आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर है, उसके लिए अपने माता–पिता, गुरू आदि के प्रति कोई ऋण नहीं है। जो गृहस्थ में प्रविष्ट होता है, उसके ऊपर माता–पिता आदि का ऋण लागू होता है।*** हमारे ऊपर कोई ऋण लागू नहीं होता है।

डेढ़ वर्ष तक मेरे मस्तिष्क के अंदर ये विचार चलता रहा कि मेरी माँ ने मुझे पढ़ाया, लिखाया, खिलाया, एम. ए. कराया। लाखों रुपये खर्च किये। उन्होंने आशा की थी कि अब मेरा बेटा एम.ए. हो गया है, अब दुकान संभाल ली है, धंधा अच्छा करने लगा, दस–पन्द्रह हजार रुपए कमाने लगा, आगे चलकर पचास हजार भी कमायेगा। मगर हो गया उल्टा क्योंकि बेटा तो घर से निकलकर यहाँ आश्रम में आ गया। अब माँ रो रही है, बिलख रही है, दु:खी हो रही है।

पहले मन में मुझे ये शंका रहती थी कि अपना घर छोड़कर कहीं मैं पाप तो नहीं कर रहा हूँ ? इस प्रश्न का उत्तर हमें कोई बताने वाला था ही नहीं। मैं सच कहता हूँ कि जो आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान, विवेक–वैराग्य का दर्शन योग महाविद्यालय में अब तक दिया जा रहा है, हमको साढ़े छह वर्ष तक उसका पांच प्रतिशत भी नहीं मिला था। ये उनका परम सौभाग्य है जो यहाँ पर आकर इन बातों को सुन रहे हैं। यदि हमको इस प्रकार का आध्यात्मिक ज्ञान–विज्ञान शुरू में ही मिला होता तो पता नहीं आज हमारी क्या स्थिति होती। डेढ़ वर्ष के बाद में किसी प्रवचन की पुस्तक में मैंने पढ़ा कि – अरे, जो व्यक्ति गृहस्थ में जाता है, उसके ऊपर ये नियम (पितृ ऋण का) लागू होता है लेकिन संन्यासी पर नहीं। उस दिन से मेरे मन का क्लेश समाप्त हो गया।

मेरे एक मित्र एक बार मेरे घर गए। उनके सामने मेरे घर वाले बहुत रोये। उन्होंने कहा–मैं उसे घर लेकर आऊँगा, एक घंटे के लिए। वे मेरे घर से सीधे गुरूकुल में आए और मुझसे कहा–आपको मेरी एक बात माननी है, पहले वचन दो मुझे। मैंने कहा–मैं वचन नहीं देता हूँ, पहले ये बताओ बात क्या है ? उन्होंने कहा कि मैं प्रण करके आया हूँ कि आपको अपने साथ

घर लेकर जाऊँगा और साथ में वापस लाऊँगा। मैंने कहा–मैं ऐसी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता। मैं स्वामी सत्यपति जी को अपना गुरू मानता हूँ अगर वे कह देंगे तो मैं चल दूंगा। हम सिंहपुरा में आए। वहाँ स्वामी जी थे। स्वामी जी ने कहा–बिलकुल नहीं जाना है इनको घर। आपने अपनी तरफ से इस बात की क्यों प्रतिज्ञा की ? फिर मैं घर गया नहीं, आज तक नहीं गया। बीच में एक बार, दो–तीन वर्ष पहले मैं अपने नगर में गया था पर उस गली में नहीं गया, उस उपनगर में नहीं गया। आर्य समाज में गया तो समाज में कम–से–कम दो–तीन सौ मेरे परिवार के लोग इकट्ठे हो गए। जैसे नेताओं के पीछे लोग इण्टरव्यू लेने के लिए पड़ जाते हैं, ऐसे डेढ़ दो घन्टे तक वे मेरे पीछे लग गये। बहुत वार्तालाप हुआ। मेरे साथ में अजमेर के धर्मवीर जी थे। वो आश्चर्य में पड़ गए कि कमाल कर दिया आपने, उनकी बातों का क्या उत्तर दिया !

हमने सीखा था कि जो प्रश्न करे, उसका उत्तर देना। फिर ऐसा प्रति–प्रश्न करना कि उनकी बोलती बंद हो जाए। चाहे भाई सामने आए, बहिन सामने आए, चाचा सामने आए, कोई भी सामने आए, एक प्रश्न वे करें तो मैं उत्तर देता और फिर जब मैं प्रश्न करता तो वे निरूत्तर हो जाते। मैंने उनसे कहा कि आपने किया क्या है इतने दिन ? आप झूठ बोलते हैं न, कितने वर्ष हो गए, सत्तर अस्सी वर्ष के हो गए परंतु आपने झूठ बोलना छोड़ा नहीं। आगे पूछा, आप छल कपट करते हैं ? चोरी करते हैं ? खान–पान ठीक रखते हैं ? आपकी दिनचर्या ठीक है ? आप ईश्वर की उपासना में कितना समय लगाते है ? ये प्रश्न पूछकर मैंने उन्हें चुप कर दिया। आगे मैंने कहा–क्या बड़प्पन दिखा रहे हैं आप, मेरे विषय में आप क्या कह रहे है ? आप जानते हैं कि मैं क्या कर रहा हूँ ? क्या नहीं कर रहा हूँ ? क्या प्रमाण है आपके पास ? क्या आपने संस्कृत को पढ़ा है ? आपने वेद पढ़ा है ? दर्शन पढ़ा है ? अपनी माँ को छोड़ना क्या खराब है ? फिर हमने शंकराचार्य जी का उदाहरण दिया। आगे पूछा–हनुमान जी ने विवाह नही किया, अच्छा किया या बुरा किया ? फिर भी आप उनकी पूजा करते हैं कि नहीं करते ? खूब प्रश्न किए उन्होंने और मैं भी उनसे प्रति–प्रश्न करता रहा और वे उसका कोई उत्तर ही नहीं दे सके। एक आदमी सौ, डेढ़ सौ आदमियों से घिरा हुआ था।

निदिध्यासन के द्वारा विभिन्न विषयों पर चिन्तन करने से ये योग्यता प्राप्त होती है, नहीं तो आदमी स्वयं को इतने लोगों के बीच में घिरा

पाकर सामान्यतया घबरा जाता है। ये परिस्थितियाँ आगे आती हैं। इसलिए इन विषयों पर विचार करना चाहिए। **अवश्यमेव घटने वाली प्रत्याशित अथवा अप्रत्याशित घटनाओं के ऊपर व्यक्ति को चिन्तन अवश्य करना चाहिए** कि उसमें मेरी क्या स्थिति है, ज्ञान–विज्ञान कैसा है, मेरी परिपक्वता कैसी है, मेरा विवेक–वैराग्य कैसा है। इन सब बातों पर ध्यान करके अपने आपको पहले से तैयार करें।

भूमिका–जो शत्रु–मित्र, मान–अपमान, सर्दी–गरमी, सुख–दुःख, आदि द्वन्द्वों में सम है, उसे आगे बढ़ने में कोई बाधा नहीं होगी। आचार्यवर निर्देश दे रहे हैं कि –

(90) हर समय समता बनी रहे।

अध्यापन के कार्य को मैं लौकिक मानता हूँ। प्रकाशन के कार्य को मैं लौकिक मानता हूँ। योग शिविर के आयोजन कार्यक्रमों को मैं लौकिक मानता हूँ। यद्यपि ये कार्य आध्यात्मिक क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। निष्काम भावना से किये जायें तो ये आध्यात्मिक क्षेत्र में व्यक्ति को प्रकृष्ट गति प्रदान करते हैं। चाहे अध्यापन हो, चाहे प्रचार हो, चाहे योग शिविर हो, चाहे लेखन हो, चाहे सेवा हो, चाहे प्रबन्ध हो आदि–आदि ये लौकिक कार्य ही हैं। लेकिन ईश्वर की प्राप्ति विवेक, वैराग्य, समाधि आदि जो मुख्य लक्ष्य हैं, वे अन्तरंग हैं।

मैंने ईश्वर की कृपा से और स्वामी सत्यपति जी से आध्यात्मिक विषय में कुछ जानकर, उनके व्यवहार को देखकर, सिद्धान्तों को समझकर, उस पर विचार कर, निर्णय लेकर, कुछ पुरूषार्थ कर, कुछ तपस्या कर, अपनी मनोस्थिति स्थिर बना ली है। अगर ऐसी स्थिति को नहीं बना पाता तो मैं इन अध्यापन, प्रवचन और प्रकाशन आदि कार्यों को नहीं करता। तात्पर्य यह है कि इन कार्यों को करते हुए यदि मैं दुःखी हो जाऊँ, चिंतित हो जाऊँ, भयभीत हो जाऊँ, अशांत हो जाऊँ, रजोगुण से युक्त हो जाऊँ तो मैं इन अध्यापन आदि कार्यो को नहीं करुँगा। लेकिन मैं अपने मन की स्थिति बिगड़ने नहीं देता, अपनी प्रवृत्ति लौकिक नहीं बनने देता।

जहाँ तक मैं समझता आया हूँ, मैंने जितने भी कार्य किये हैं, उन सबमें यथासम्भव, यथाशक्ति, यथाज्ञान ईश्वर के समर्पित होने का प्रयास किया है। मैंने यथासम्भव निष्काम भावना से ये कर्म किये हैं। इसका परिणाम ये है – सफलता मिलती है, नहीं मिलती है, थोड़ी मिलती है, लम्बे काल में

मिलती है, इसका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विद्यालय का क्या स्तर है ? घट रहा है, बढ़ रहा है, धन मिलता है, नहीं मिलता है, विद्यार्थी आते हैं, नहीं आते हैं, गाली निकालते हैं, सम्मान करते हैं, अपमान करते हैं, आरोप लगाते हैं। मगर इन घटनाओं और क्रियाकलापों से मेरे मन में न सुख की भावना पैदा होती है और न दुःख की भावना होती है।

सुख और दुःख, लाभ और हानि, सम्मान और अपमान, प्रशंसा और निंदा, अनुकूलता और प्रतिकूलता ऐसी परिस्थिति के अंदर व्यक्ति को सम बने रहना चाहिए। बिल्कुल दुःखी नहीं होना चाहिए। मैंने एक चीज सीखी कि **कोई व्यक्ति गलती करके, भूलकर के मुझे दुःखी न बनाये।** हम क्यों दुःखी बनें ? अनुशासन में वह नहीं चलता है, आलसी वह है, प्रमादी वह है, झूठा वह है, छली–कपटी वह है, निंदक वह है और अनेक प्रकार के दुर्गुण से युक्त वह है, तो हम क्यों दुःखी हों ?

सुधार करना, बताना, उचित निर्देश करना मेरा कर्त्तव्य है। ऐसा करके मैं दुःखी नहीं होता हूँ। मेरे कार्य में असफलता होती है, बहुत असफलता होती है। सामान्य व्यक्ति के सामने इस प्रकार की असफलता आ जाये तो वह व्यक्ति घबरा जाये। हजारों का, लाखों का नुकसान हो जाये, कीमती चीज चली जाए तो क्या स्थिति बने ? मेरे दुःखी न होने का कारण क्या है ? इसका कारण है – चिंतन, मनन। सम्भावित कठिनाईयों को उपस्थित करके अपने आपको इस प्रकार से उन्हें झेलने के लिए पहले से तैयार करना। आप भी अपने अन्दर ऐसी योग्यता विकसित करें, यह भी कामना है।

भूमिका–जिसने अविद्या, अहंकार, कामना, द्वेष और अभिनिवेश तथा इनसे उत्पन्न होने वाले कर्मों का त्याग कर दिया, वह ही संन्यासी बनने की योग्यता बना सकता है:–

(91) संन्यासी कौन है ?

जीते जी, जिसने सब कुछ छोड़ दिया है, वो संन्यासी है। कल्पना कीजिये किसी व्यक्ति का नाम ले लो जिसके पास धन, संपत्ति है। अपनी जमीन भाईयों को दे दे, मकान बेटों को लौटा दे, सोना–चाँदी बेटियों को दे दे और खाली ठन–ठन गोपाल बनकर आकर यहाँ आश्रम में बैठ जाये और दुःखी न हो। उसका नाम है संन्यासी। वह यहाँ आकर के कहे कि मैंने वानप्रस्थ ले लिया है, धन, संपत्ति छोड़ दी है, जितनी शक्ति है, उसके अनुरूप सेवा

करूँगा और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा, योगाभ्यास करूँगा। जो रोटी–खिलानी है, मुझे खिला देना। मेरे पास कोई पैसा नहीं है। मैं निष्काम भावना से कार्य करूँगा, साधना करूँगा, सेवा करूँगा। उसकी ऐसी स्थिति आ जाती है तो हम कहेंगे कि ये व्यक्ति संन्यासी है। मैं सैद्धांतिक बात बता रहा हूँ।

कभी ऐसी कल्पना करके देखें तो अपनी मनोस्थिति का पता लगेगा। कल्पना करेंगे तो तत्काल विचार उठेंगे कि – सोलह लाख की जमीन कैसे छोड़ दें ? मकान कैसे छोड़ दें ? अपना ही तो है। बिना पुरूषार्थ के मिल रहा है। किसी के मन में विचार आयेगा– हम नहीं खायेंगे, यहाँ आश्रम में लगा देंगे। यह है तो अच्छा काम, लेकिन दिल का तार उन चीजों से जुड़ा हुआ है।

भूमिका–सुख प्राप्ति की इच्छा राग कहलाती है । यह इच्छा किसी में कम तो किसी में ज्यादा होती है । अतः–

(92) राग के कई स्तर होते हैं।

दो व्यक्तियों के बीच राग कई स्तर का हो सकता है। जैसे मित्रता कई प्रकार की होती है। एक मित्र किसी के गले लिपटकर रहता है, इतना राग होता है। एक मित्र के कंधे से कंधा मिलाकर के चलता है। एक मित्र के हाथ में हाथ मिलाकर के चलता है। अतः राग भी अनेक प्रकार का होता है।

कुछ व्यक्ति साँप की तरह धन–सम्पत्ति के ऊपर फन फैलाकर के बैठते हैं। कुछ बैठते तो नहीं हैं लेकिन चारों तरफ चक्कर लगाते रहते हैं। थोड़ा सा जायेंगे फिर देखकर के आयेंगे। साँप केंचुली छोड़कर के फिर वापस उसके पास जायेगा और देखेगा कि कहाँ है केंचुली। देखकर के तसल्ली कर फिर अपने बिल में लौट जायेगा। फिर अपनी छोड़ी केंचुली देखने के लिए वापस आयेगा। ऐसे ही आदमी करता है। जो मकान छोड़ा है, धन–संपत्ति छोड़ी है, बेटा छोड़ा है, जमीन छोड़ी है, मकान छोड़ा है, वो ठीक है कि नहीं है वह घर जाकर देखकर वापस आता है। साल में कम से कम एक या दो बार चक्कर जरूर लगाता है। मिलने से कुछ न कुछ राग की पूर्ति हो जाती है। बेटों से मिल आये, मकान को देख लिया, जमीन को देख लिया, इसको देख लिया, उसको देख लिया। इस तरह के व्यक्ति में कम राग होता है।

जिन्होंने माता–पिता, धन, संपत्ति, धंधा व्यवसाय को छोड़ दिया, ये आधा संन्यास है। ये आधी मुक्ति है। लौकिक व्यक्ति हमें मूर्ख समझता है। हम विचार करते हैं कि इसकी बुद्धि में समझ नहीं आ रहा है। हमको क्या समझ रहा है ये। बुद्धिमत्ता का, साहस का, बल का, निर्भीकता का, पराक्रम का काम हमने किया है। लेकिन हम इनको मूर्ख दिखाई देते हैं। ये जो आश्रम में नौकरी छोड़ के आये हैं, ये धंधा छोड़कर के आये हैं, क्या यह मूर्खता है ? क्या ये मूर्ख हैं सारे? उनको हम पागल दिखाई देते हैं।

संन्यासी व्यक्ति रोटी का, कपड़े का, मकान का अधिकारी है। उसको इन्हें प्राप्त करने का अधिकार है। जो वास्तविक रूप में त्याग करके आता है। झगड़ा करके बहुओं ने, बेटों ने निकाल दिया है,वो इसका अधिकारी नहीं। जो अपनी इच्छा से धन–सम्पत्ति आदि का त्याग करके आया है। वो त्यागी है। उसको अधिकार है।

भूमिका–हमेशा से देखा गया है कि हमारा जीवन जैसा बनता है या हमें अपने जीवन में जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह हितकर ज्ञान को कार्यरूप में परिणत करने से, उस ज्ञान को अपने आचरण में उतार लेने से ही प्राप्त होता है। इसलिए भाव और विचारों का प्रकट रूप 'आचरण' है। ज्ञान का चिराग बुझने पर व्यक्ति आचरण भ्रष्ट हो जाता है। आचरण रहित अच्छे विचार खोटे सिक्के की तरह हैं। कहा भी गया है– ''कन भर आचरण, मन भर चर्चा से बेहतर है''। आचार्यवर कहते हैं–

(93) आचरण में लाये बिना ज्ञान व्यर्थ है।

पहले व्यक्ति सुनता है, इसके बाद उसके ऊपर विचार करता है, फिर निर्णय लेता है, फिर प्रवचन करता है, और फिर वैसा व्यवहार करता है।

धनाढ्य व्यक्तियों के पास बहुत धन होता है। आपको ऐसे अनेक व्यक्ति मिलेंगे कि जिनको पूरा पता नहीं होता है कि उनके पास में कितना धन है। बैंक में कितना पैसा जमा है, शेयर में कितना निवेश किया है, घर में कितना नगद रखा है, मकान की कीमत क्या है, दुकान की कीमत क्या है, गाड़ियों की कीमत क्या है, वस्त्रों और आभूषणों की कीमत क्या है, आदि–आदि बातों का उसे पता नहीं होता है। उसके पास में इतना धन होता है कि वो उस धन को ठीक प्रकार से व्यवस्थित रूप में खर्च करता चले तो वह आजीवन

बिना हाथ हिलाए खा–पी सकता है, समस्त क्रियाकलाप कर सकता है। लेकिन ऐसे व्यक्तियों को भी केवल धन कमाने में लगते देखा जाता है। धन कमाना बुरा नहीं है। लेकिन वे केवल धन के पीछे लगे रहते हैं। यह बुरा है।

दिनचर्या में स्वाध्याय नहीं, सत्संग नहीं, आत्मचिन्तन नहीं, सेवा, परोपकार की भावना नहीं, त्याग नहीं, तपस्या नहीं, दान नहीं। जब एक तरफ ऋषियों के सिद्धांतों को, मन्तव्यों को और उनकी जीवन शैली को देखते हैं और दूसरी तरफ ऐसे व्यक्तियों के जीवन को देखते है तो बड़ा आश्चर्य होता है कि ये क्या हो रहा है ? ऋषि कहते हैं कि स्वाध्याय मत छोड़ो, यज्ञ मत छोड़ो, उपासना मत छोड़ो, सत्संग मत छोड़ो, सेवा भाव मत छोड़ो, व्यायाम मत छोड़ो आदि बहुत–सी बातें वे अपनाने के लिए कहते हैं। इसके विपरीत, ये व्यक्ति उन सबको छोड़कर केवल धन कमाने में लगे रहते हैं।

ऐसी ही स्थिति आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति की होती है। वह आध्यात्मिक बातों को इतना सुनता है, इतना पढ़ता है, इतना लिखता है लेकिन उसकी आवृत्ति (पुनरावृत्ति) नहीं करता है। कापियाँ की कापियाँ भर–भर के लिख देता है। ***कई ब्रह्मचारियों के यहाँ डिब्बे भर भर के लिखी गई कापियाँ मिलती हैं। लेकिन एक घंटे में विचार और व्यवहार का स्तर ऐसा गिर जाता है कि सब कुछ किया, धरा, पढ़ा–लिखा, सुना हुआ धराशायी हो जाता है।*** वह तो आवेश (गुस्से) में आकर के, कुछ का कुछ विचार करके और बस मैदान छोड़कर भागकर चला जाता है। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि जिस व्यक्ति ने एक, दो, तीन, चार वर्ष तक श्रेष्ठ बातों को पढ़ा, लिखा, सुना, वही आवेश में, उत्तजना में आकर विद्यालय से भाग गया, चला गया। उसको छोड़िए, जो रुका हुआ है, टिका हुआ है, अगर उसके जीवन के अंदर महानतम ज्ञान–विज्ञान को सुनकर–पढ़कर वो पुरूषार्थ की भावना, गंभीरता, ईश्वर–प्रणिधान, शांति, परोपकार की भावना, निश्चिंतता, क्षमा की भावना, प्रेम, सहिष्णुता, सरलता, तपस्या और त्याग दिखाई नहीं देते हैं तो उसका पढ़ना–सुनना व्यर्थ है। इससे पता चलता है कि वे केवल पाठ को सुनो–लिखो, लिखो–सुनो, जानो, बस इसी एक काम में लगे रहते हैं।

भौतिक दृष्टिकोण से जैसे वणिक (नोट गिनने वाले कैशियर) की स्थिति होती है, वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में ऐसे साधक की स्थिति होती है। वह केवल सुनने में, पढ़ने में और लिखने में लगा रहता है। लेकिन वह

पढ़ा–लिखा उसके आचरण में दो टका भी नहीं उतरता। व्यक्ति आत्मनिरीक्षण कर यह देखता ही नहीं कि प्रगति हो रही है कि नहीं हो रही है। आत्मनिरीक्षण करे तो उसको इस बात का पता हो जाए।

विद्या का, ज्ञान का अंतिम परिणाम यह है कि उसको अपने व्यवहार में ले आएँ। उस चीज को सुनकर के जीवन के अंदर अगर मोड़ न आये तो ऐसी विद्या भार रूप बन जाती है। जैसे धनिक आदमी जिसके पास करोड़ों की संपत्ति है, मगर वह सूखी रोटी खा रहा है, दाल रोटी खा रहा है। उसके भोजन में घी नहीं, सब्जी नहीं, फल नहीं, कोई मिठाई नहीं, अच्छे व्यंजन नहीं। ऐसे ही ये इतना पढ़ा हुआ, इतना सुना हुआ, इतना जाना हुआ है फिर भी ऐसा व्यक्ति वैसे ही अपने जीवन को व्यतीत करता है, जैसे कि लौकिक आदमी व्यतीत करता है। व्यवहार में अत्यंत कठोरता, बिना परीक्षा के (सोच–विचार के) बोलना, बिना परीक्षा के दूसरे की वस्तुओं को, दूसरे के अधिकार को लेना, दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप करना, इंद्रियों पर और मन पर संयम न होना और अत्यंत लौकिक होकर ईश्वर को भूलकर विचरण करना, ऐसी स्थिति आती है। उसने ***सत्य के विषय में, अहिंसा के विषय में, अस्तेय के विषय में, संयम के विषय में, पुरुषार्थ के विषय में और ईश्वर–प्रणिधान के विषय में बहुत पढ़ा है। यह शाब्दिक ज्ञान उसके दिमाग के अंदर भरा पड़ा हुआ है और कापियों के अंदर भी लिख रखा है, लेकिन जब बोलेगा तो वैसे ही कठोर बोलेगा, चिल्ला के बोलेगा। ऐसे व्यक्ति का पढ़ना–लिखना व्यर्थ है।***

एक करोड़पति व्यक्ति यहाँ विद्यालय में आए। बोले–बड़ा अच्छा है जी ! आपका आश्रम और विद्यालय। वे पाँच रूपए का दान देकर चले गये। एक लौकिक आदमी विचार करेगा कि करोड़ों रूपये इसके पास में हैं और पाँच रुपए का दान देकर गया। ऐसे ही बह्मचारी को घर छोड़े हुए आठ–दस वर्ष हो गए हैं, बड़ा भ्रमण किया है, बाल कटा लिए हैं, शास्त्र पढ़ लिया है, संस्कृत पढ़ ली है, 'सत्यार्थ–प्रकाश' पढ़ लिया है, दर्शन पढ़ लिया है, ईश्वर का बड़ा ध्यान कर लिया है, लेकिन व्यवहार में मृदुता नहीं है। वह अगर बोलेगा तो ऐसा ही बोलेगा जैसे कोई सड़क–छाप या कोई सब्जी मंडी का आदमी बोल रहा हो। ये किसकी तरह हो रहा है, उस सेठ की तरह हो रहा है जिसके पास में पैसा पड़ा हुआ है मगर वह उस पैसे का प्रयोग नहीं कर रहा है।

भूमिका– आचार्यवर संघर्ष करने के लिए आह्वान कर रहे हैं:–

(94) संघर्षमय जीवन में ही विशेष उपलब्धियाँ होती हैं।

कोई कठिनाई न हो, बाहर जाना न पड़े, सब्जी लाना न पड़े, कुछ न करना पड़े, कोई काम हो ही नहीं तो व्यक्ति का निर्माण क्या होगा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जो विशेष व्यक्ति होगा उसको इन कामों के न रहने से समय का लाभ होगा और वह अपने एक लक्ष्य के लिए अधिक समय दे पायेगा। लेकिन मैं अधिकाँश व्यक्ति की बात कर रहा हूँ। ***जिसका संघर्षमय जीवन नहीं होगा, जो तपस्वी नहीं बन पाएगा, उस व्यक्ति के अंदर कमी रह जाएगी।*** उसे केवल शाब्दिक ज्ञान ही प्राप्त होगा।

स्वामी दयानन्द जी क्या करते थे ? वे केवल वेद का उपदेश ही नहीं करते थे, शास्त्रार्थ भी करते थे, वेदों का भाष्य करते थे, लोगों से मिलते भी थे और पुस्तकों का प्रकाशन भी करते थे, कागज भी जमा करते थे, पैसा भी जमा करते थे, उसमें से साहूकार से ब्याज भी लिया करते थे, प्रेस भी था, कलकत्ता से फोन्ट भी खरीदते थे। कितना लंबा चौड़ा व्यापार छेड़ रखा था ऐसा। इस क्षेत्र में व्यक्ति को सहन करना पड़ेगा। ***यदि संघर्ष न हो, प्रतिकूलता न हो तो व्यक्ति दृढ़ नहीं होगा।*** घी, दूध, मलाई, मिठाई खिलाते रहें और कोई भाग दौड़ नहीं, व्यायाम नहीं तो शरीर कैसा बन जाएगा। वह थुलथुल बन जाएगा। ऐसा शरीर तो कोई काम का नहीं रह जाएगा। जब भागेगा दौड़ेगा, सर्दी हो, गर्मी हो, प्रतिकूलता हो, जागना हो, उठना हो, कुछ प्रयास हो तो क्या होगा? शरीर मजबूत बनेगा। आप इस विषय में चिन्तन किया करें। निदिध्यासन किया करें और आप अपने को संघर्ष के लिए तैयार करें।

भूमिका–प्रमाद असफलता का एक कारण है, इसलिए:–

(95) पढ़े हुए को भूलें नहीं।

देखिए, हम साधुओं को जीवन के अंदर सैकड़ों व्यक्ति मिलते हैं, जो हमें जीवन पथ पर चलते हुए कुछ भेंट देते हैं। किसी ने कपड़ा दिया, तो किसी ने रुपया दिया, किसी ने गाड़ी दी तो किसी ने सोना दिया, किसी ने मशीन दी तो किसी ने आभूषण दिया। हम उनको भूलते नहीं, कभी नहीं

भूलते हैं। वस्तु और व्यक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध मन में बना रहता है कि इस व्यक्ति ने मुझे यह दिया था। इसलिए इस बात को वह कभी नहीं भूलता है।

कठिनाईयों के समय में कोई व्यक्ति हमें दो रुपया भी देता है तो वो हमें याद रहेगा। एक उदाहरण दे रहा हूँ। अगर आप स्टेशन में खड़ें हैं और एक सौ दो रूपये मूल्य् का ट्रेन का टिकट हो और आपके पास सौ रुपये हों और टिकट वाला कह रहा हो कि दो रूपये नहीं दोगे तो टिकट नहीं दूंगा और गाड़ी निकलने वाली हो। इस परिस्थिति में आपकी हालत खराब होगी। उस समय आपको अगर कोई दो रुपये देता है तो वह हमेशा याद रहेगा। इसी तरह ***अगर आपको एक आदमी वर्षों तक अध्ययन करके, चिन्तन करके रोजाना नई–नई चीजें दे रहा है, और आप उसको याद ही नहीं रखते हो तो लाभ क्या है, कुछ नहीं।*** आज तक कितनी चीज आपको बताई। निचोड़–निचोड़कर के रस निकाल कर छान कर गिलास में लेकर के मुँह तक लाकर के लगा देता हूँ और आपको याद नहीं रहता। ये तो उसी कंजूस सेठ की तरह है जो लिया और रख दिया। मगर उसका कोई उपभोग नहीं किया।

भूमिका–दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि :–

(96) विषय को याद भी करो।

जिस चीज को हम दुनिया भर में सिखाने जा रहे हैं, वो चीज ही हमें याद नहीं है। वह चीज हम लिखें और याद करें। साफ और सुन्दर लिखें। कीड़े–मकोड़े की तरह हैंडराइटिंग नहीं होनी चाहिए। अपनी राईटिंग (लेख) ठीक करनी चाहिए। बताए गये मंत्रों को याद करो, श्लोकों को कंठस्थ करो। अगर याद नहीं किया और अगर उनके अर्थों के बारे में पूछने पर बताने वाले का दिवाला निकल गया तो ऐसी पढ़ाई करना व्यर्थ है।

भूमिका–ज्ञान की कीमत क्या है ?

(97) एक शब्द सारे जीवन को बदल सकता है।

ज्ञान की कीमत समझनी चाहिए। धन से, संपत्ति से ज्ञान नहीं मिलता है। एक उपदेश, एक प्रवचन, एक वाक्य, एक घटना बल्कि एक शब्द भी व्यक्ति के जीवन को बदल देता है। वह तो एक नई दिशा, एक नया मार्ग, गति, उत्साह, प्रेरणा, पराक्रम, जोश की भावना व्यक्ति के अन्दर भर देता

है। व्यक्ति जो बिल्कुल नीचे गिरा हुआ था, वह कहाँ–से–कहाँ पहुँच जाता है। आपको भी इस बात का अनुभव होगा। पुस्तकों को पढ़ते हैं हम। ***मन में जब हताशा–निराशा की स्थिति बनती है, मन में मूढ़ (जड़) स्थिति बनती है, दौर्मनस्य (क्षोभ) की स्थिति बनती है तो किसी भी आर्ष ग्रंथ को उठाकर देखिए, आपको प्रेरणा मिलेगी।*** मैं अपने विषय में बताता हूँ कि जब कभी मूढ़ स्थिति बनती है, किंकर्त्तव्य विमूढ़ स्थिति बनती है तो तत्काल मैं ऋषिकृत ग्रंथ को खोलता हूँ। कोई प्रवचन सुनता हूँ, अपनी संचिकाओं (नोटबुक) को देखता हूँ, स्वामी सत्यपति जी के वाक्यों को देखता हूँ, जो उन्होंने लिखाये थे, उनसे मुझे बड़ी प्रेरणा मिलती है। पता नहीं कितने व्यक्ति ऐसे होंगे जो प्रतिदिन न्यूनतम पाँच दस मिनट के लिए पुरानी संचिका पढ़ते होंगे। बिना इसके सब बेकार है। वही सेठ जैसी स्थिति है। लाओ–लाओ–लाओ।

मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ, जो इस प्रवचन के माध्यम से बताया गया है, आज के सामान्य व्यक्ति की बात तो दूर रही, अन्य विधर्मियों की बात दूर रही, आर्य समाजियों में भी साधारण सज्जनों को नहीं, विद्वानों को वे सिद्धांत, वे मंतव्य, वे विधि विधान, वेद, उपनिषद और दर्शनों के विषय ज्ञात नहीं है। जो यहाँ पर बताया जाता है, वह अपने भारतवर्ष में कहीं भी इस रूप में नहीं बताया जाता। विद्वान बहुत हैं, उनको हम नमन करते हैं, हम उनकी प्रशंसा करते हैं, लेकिन निरंतर, सरलता से, इस रूप में, इतनी मात्रा में प्रामाणिक रूप में बताया जा रहा है, वैसा नहीं मिलेगा। और लोगों की स्थिति बिल्कुल कंजूस की तरह है, बस लिया और रख दिया। परिणाम क्या होता है, किताब में कीड़े लग जाते हैं, दीमक लग जाती है, यह स्थिति बनती है। वह ज्ञान विज्ञान उसका भार होता है। इस बात का विशेष ध्यान रखें।

मैं बार–बार कहता हूँ कि ***आपने जो सुना है, उसकी आवृत्ति करें। अगर पाँच मिनट में कॉपी पलट लेंगे तो तरोताजा हो जाएँगे।*** रोज स्नान करते हैं, रोज खाते हैं, कैसे तृप्ति मिलती है। जब आप कभी किसी का भाषण सुने। उनके किसी विषय पर उन बिंदुओं की अलग–अलग संचिकाएं बनाकर रखें। उनको खोलते ही प्रेरणा मिलती है। आदमी जब ऊँघता है या उसको आलस्य आता है तो उसको ठंडे पानी के छींटे देते हैं तो क्या होगा? उसमें चुस्ती आ जाती है। बस ऐसी ही स्थिति है। आप अपनी संचिकाओं

को खोलते हैं तो चुस्ती, फूर्ति, स्फूर्ति, पुरूषार्थ की भावना उत्पन्न हो जाती है। निराशा, आलस्य, प्रमाद, काम की भावना व अविद्या निकल जाती है।

(98) अगली कक्षा में पिछली कक्षा में पढ़ा तैयार कर जाना चाहिए।

लिख लिया, चले गये और जाकर रख दिया, यह ठीक नहीं है। उसे पढ़ाने की क्षमता रखो। हम अपने वर्षों के निचोड़ को बिठाकर बता रहे हैं और अगर आप उसका एक वाक्य भी नहीं बता रहे हैं कि कल क्या बताया गया था तो ऐसी स्थिति में पढ़ने का कोई अर्थ नहीं। चाहे योगदर्शन की कक्षा हो या योगाभ्यास की कक्षा हो, किसी भी कक्षा में बिना पूर्व तैयारी के नहीं आना चाहिए।

भूमिका–दौलत वाला ही युवा, दौलत वाला ही मर्द, दौलत वाला ही कुलीन, दौलत वाला ही सुख–सुविधासम्पन्न, दौलत वाला ही बड़ा कुटम्बी, दौलत वाला ही पूज्य, दौलत वाला ही सर्वगुण सम्पन्न। यही संसार की रीत है। आचार्यवर धन की प्रशंसा में कह रहें हैं :–

(99) धन का बड़ा महत्त्व है।

संसार में लौकिक व्यक्तियों में धन का बहुत बड़ा महत्त्व है। ***धन से व्यक्ति बहुत–सी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है।*** धन से भोजन मिलता है, वस्त्र मिलता है, मकान मिलता है, मनोरंजन होता है, धार्मिक कार्य होते हैं, दान–पुण्य होता है, सेवा परोपकार के काम होते हैं, भ्रमण (यात्रा) होता है। इस प्रकार धन के माध्यम से अनेक प्रकार के प्राकृतिक ऐन्द्रयिक सुखों को व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। यह हमारे कष्टों को एक हद तक कम कर देता है। अतः धन का बड़ा वर्चस्व है।

भूमिका–मित्र साथ देता है काम पड़ने पर, मित्र साथ देता है आपत्ति काल में। मित्र सबसे बड़े सहायक का मधुर दायित्व निभाता है। इसलिए :–

(100) मित्र का महत्त्व है।

धन के साथ–साथ मित्रता का भी बहुत बड़ा महत्त्व है। जिस व्यक्ति के अधिक मित्र हैं, वह बिना धन के भी काम निकाल लेता है, कम धन से भी काम निकाल लेता है। ***अनेक बार धन से काम नहीं होता है, मित्रों***

से कार्य होता है, परिचितों से काम होता है। लोक में जो काम धन से होता है, वो ही काम मित्रों से होता है बल्कि कई बार उससे भी अधिक मित्रों से कार्य होता है। किसी व्यक्ति के कितने अधिक मित्र हैं, कितने अधिक परिचित हैं, उसकी परिगणना से उस व्यक्ति के महत्त्व को, उसकी योग्यता को, उसके बल को, उसकी शक्ति को पहचाना जाता है। उसका वर्चस्व मित्रों के माध्यम से, परिचितों के माध्यम से जाना जाता है। ***लोकतंत्र में तो जिसके जितने अधिक मित्र होंगे, प्रशंसक होंगे, शिष्य होंगे, भक्त होंगे, अनुयायी होंगे, उसका उतना अधिक महत्त्व होता है।***

व्यक्ति के दस–बीस मित्र भी नहीं होते हैं। विदेश की बात दूर रही, देश के प्रांतों की बात दूर रही, गली–समाज में रहने वालों की बात दूर रही, पड़ोसियों से भी उनकी मित्रता नहीं होती। और छोड़िये, अपनी जाति वाले जो अपने सगे–संबंधी होते हैं,उनसे उनकी मित्रता नहीं होती है। और आगे सुनिये, कहीं–कहीं तो इतनी संकीर्ण और दोषयुक्त स्थिति है कि घर में रहने वाली अपनी माता से, पिता से, पुत्र से, पुत्री से, बहू से, बेटे से, पति से, पत्नी से भी घनिष्ठ मित्रता नहीं होती।

भूमिका–आचार्यवर बता रहे हैं, विश्वास को उत्पन्न करने वाली वस्तु क्या है ?

(101) अच्छे व्यवहार से विश्वास बनता है।

ये मित्रता, ये परिचय, इसका आधार है – विश्वास। एक व्यक्ति अपने ज्ञान–विज्ञान से, अपनी वाणी से, अपने व्यवहार से, अपने त्याग से, अपनी तपस्या से, अपने पुरुषार्थ से, अपने बलिदान की भावना से दूसरों के लिए रात–रात जगता है, भूखा रहता है, प्यासा रहता है, भागता है, दौड़ता है, उसके विषय में विचारता है, उसके हित की भावनायें रखता है, योजनाएँ बनाता है, कष्ट उठाता है। इस प्रकार का व्यवहार करने से दूसरे के मन में उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। ***ये विश्वास निश्चिंतता से, श्रद्धा से, त्याग से और तपस्या के व्यवहार से उत्पन्न होता है। और इन सबके पीछे है – 'सत्य'। सत्य का आचरण करने वाला, धर्म का आचरण करने वाला, प्रतिज्ञाओं का पालन करने वाला, दिये गये वचनों का पालन करने वाला व्यक्ति, दूसरे के मन में अपने प्रति विश्वास पैदा कर देता है।*** इसके विपरीत स्वार्थ के कारण, अवसरवाद के कारण जो वचनों

का पालन नहीं करता है, झूठ बोल देता है, उस व्यक्ति का विश्वास नष्ट हो जाता है।

भूमिका–आचार्यवर के मत में विश्वास की शक्ति जबरदस्त है। बिना विश्वास के काम नहीं होता। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि :–

(102) दुनिया विश्वास से चलती है।

स्वामी दयानंद ने लिखा है उसका भाव है कि विश्वासघात करना बहुत बड़ा दोष है संसार के अंदर। याद रखें – यह दुनिया विश्वास से चलती है। सच्चे पति–पत्नी, सच्चे माँ–बाप, बाप–बेटा, भाई–बहिन को परस्पर इतना विश्वास होता है कि मेरा पुत्र, मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरी बहन, मेरी माँ, मेरा पड़ोसी, मर जायेगा, उसकी चाहे कितनी ही हानि हो जायेगी, उसे कितना ही कष्ट आयेगा, उसे कितना ही दुःख होगा, लेकिन वह मेरे साथ विश्वासघात नहीं करेगा। वह मर जायेगा पर मेरे साथ दगा नहीं करेगा, छल–कपट नहीं करेगा, हानि नहीं करेगा, इतना उसको विश्वास होता है।

भूमिका–जहाँ विश्वास होगा, वहाँ प्रेम होगा, वहीं मैत्री होगी। इसलिए जिन्होंने विश्वास खो दिया, उनके आगे–पीछे कोई नहीं होता । कारण कि –

(103) रिश्ते विश्वास की डोर से बंधे होते हैं।

संसार के अंदर माता–पिता का संबंध अच्छा माना गया है। क्यों ? क्योंकि वे एक–दूसरे के लिये मरते हैं, सेवा करते हैं, भागते हैं, दौड़ते हैं। एक संबंध संसार में पति–पत्नी का भी है। पति–पत्नी का संबंध बहुत महत्त्वपूर्ण है। कारण क्या है ? ***एक दूसरे के लिए त्याग की भावना, समर्पण की भावना, सेवा, श्रद्धा, निष्ठा का मन में बना होना। इन सब का आध ार 'विश्वास' है।*** कोई भी पारिवारिक संबंध हो, सामाजिक संबंध हो, जहाँ परस्पर विश्वास बना होता है तो एक बहुत बड़ी संपत्ति, एक बहुत बड़ी शक्ति व्यक्ति के मन में होती है।

बाप और बेटा, पति और पत्नी, भाई और बहिन, सास और बहू और भी परिजन लोग साथ में रहते हैं, साथ में खाते हैं, साथ में पीते हैं, साथ में सब कुछ करते हैं। एक घर, एक माता–पिता, एक परवरिश, सब कुछ

एक है। लेकिन जहाँ विश्वास नहीं होता है, वहाँ ये खून के रिश्ते भी अलग हो जाते हैं अथवा उनको लोग अलग कर देते हैं। अविश्वास होने पर उनके मन में एक दूसरे के प्रति संशय पैदा हो जाता है। विश्वास न होने के कारण ही पति–पत्नी के बीच में दूसरे व्यक्ति श्रद्धा समाप्त कर देते हैं। दूसरे लोग परस्पर प्रेम को समाप्त कर देते हैं, निष्ठा को समाप्त कर देते हैं। वे लोग पति–पत्नी को आपस में भड़का देते हैं, लड़ा देते हैं। याद रखिए– जिनका परस्पर विश्वास नहीं होता वही पति–पत्नी, बाप–बेटा, सास–बहू, भाई–बहिन, गुरू–शिष्य, साथी, पड़ोसी आपस में झगड़ते हैं।

प्रायः देखा जाता है कि गलत अप्रमाणिक बातों के आधार पर चाहे वो पड़ोसी की हो, चाहे परस्पर पारिवारिक हो, चाहे माँ–बाप की हो, भाई–बहिन की हो, भाई–भाई की हो, सास–बहू की हो, अथवा पति–पत्नी की हो, एक–दूसरे के प्रति अविश्वास होने पर ही परस्पर विरोध उत्पन्न होता है।

जिस पति–पत्नी में, पड़ोसी में, अथवा संबंधियों में परस्पर घनिष्ठ श्रद्धा है, विश्वास है, उनको कोई व्यक्ति अलग नहीं कर सकता, भड़का नहीं सकता, उनके सामने निंदा चुगली नहीं कर सकता। विश्वासी व्यक्ति तो सुनेगा ही नहीं, और ना ही उसे सुनाने की किसी में ऐसी हिम्मत होती है। जिन पति–पत्नी का, भाई–बहिन का, बाप–बेटे का, सास–बहू का परस्पर विश्वास है, प्रेम है। दूसरा कोई व्यक्ति उस प्रेम को, श्रद्धा को, निष्ठा को, विश्वास को देखकर सास को बहू के विषय में, बहू को सास के विषय में, बाप को बेटे के विषय में और बेटे को बाप के विषय में, और पति को पत्नी के विषय में, पत्नी को पति के विषय में भड़काये, ऐसी हिम्मत नहीं होती। अगर कोई दुस्साहस करके कह भी देता है तो पति और पत्नी उसको झिड़क देते हैं, बोलने से मना कर देते हैं, रोक देते हैं, उसकी बात का बुरा मानते हैं। कभी तो ऐसी स्थिति बन जाती है कि वे उससे अपने संबंध खत्म कर लेते हैं, उसके प्रति प्रेम और श्रद्धा समाप्त कर लेते हैं।

पति–पत्नी में एक दूसरे के प्रति संशय बना हुआ है, प्रेम नहीं है, श्रद्धा नहीं है, निष्ठा नहीं है, रुचि कम है, विश्वास कम है, तो कोई भी व्यक्ति आकर पति–पत्नी को भड़का देगा। आश्चर्य की बात है कि जो दस वर्ष से, बीस वर्ष से, चालीस वर्ष से साथ में रह रहे हैं, खा–रहे हैं, पी रहे हैं, बच्चे पैदा किये हैं, दिन रात जो एक दूसरे को अपनी अर्धांगिनी या अर्धांग कहते हैं, उन व्यक्तियों को एक सामान्य व्यक्ति आकर भड़का दे, उनमें अलगाव पैदा

कर दे, संशय पैदा कर दे, विरोध पैदा कर दे, लड़ाई–झगड़ा पैदा करा दे, ये होता है। क्यों होता है ? क्योंकि वहाँ अविश्वास होता है। पति–पत्नी में अविश्वास होगा तभी कोई व्यक्ति आकर उनमें झगड़ा पैदा कराता है, नहीं तो होगा ही नहीं।

भूमिका–जो एक बार अपकार कर चुका है, जो एक बार विश्वासघात कर चुका है, वह कितना ही सत्कार करे, कितना ही प्रेम का अभिनय करे, इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि वह दुबारा वैसा नहीं करेगा। इस कारण से आचार्यवर बता रहे हैं कि :–

(104) गये विश्वास को दोबारा वैसा का वैसा कायम नहीं किया जा सकता।

स्वार्थी व्यक्ति, अज्ञानी व्यक्ति, अवसरवादी व्यक्ति क्षणिक सुखों के लिए इस विश्वास को नष्ट कर देते हैं। हमारी वैदिक परम्परा यह है कि कहीं भी, कभी भी, किसी से भी विश्वासघात नहीं करना चाहिये। तुलसीदास जी ने क्या कहा था – ''रघुकुल रीत सदा चली आई, प्राण जाये पर वचन न जाई।'' ***जो व्यक्ति एक बार छल–कपट आदि के माध्यम से किसी का विश्वास नष्ट कर देता है, उसका जीवनपर्यन्त विश्वास कायम नहीं होता। पहले जैसा विश्वास नहीं होता।*** विश्वास तो होता है, अगर वह क्षमा याचना कर ले, अपनी भूल माने, दंड ले, प्रायश्चित करे और फिर आगे कभी इस प्रकार की भूल योजनाबद्ध रूप में न करे तथा जानबूझकर गलती न करे तो मन में विश्वास बनता है। मगर वैसा नहीं बनता है, जैसा पहले बना था।

कई वर्षों तक यह हमारी समझ में नहीं आया कि एक बार असत्य बोल दिया तो जीवनभर तक विश्वास क्यों नहीं होता है। आगे जीवनभर उसने झूठ बोला ही नहीं, विश्वासघात किया ही नहीं, तो क्या उसके प्रति विश्वास करेगा ही नहीं। फिर समझ में आया, विश्वास तो होता है पर 99 प्रतिशत होता है, 99-9 प्रतिशत होता है लेकिन पूरा 100 प्रतिशत नहीं होता है। वह एक बार विश्वासघात कर चुका है, इसलिए जैसा विश्वास, कभी भी विश्वास न भंग करने पर होता, वैसा विश्वास तो आगे भविष्य में उस पर कभी नहीं होगा। क्योंकि एक बार धोखा दे दिया उसने, एक बार झूठ, छल कपट, अन्याय, और पक्षपात कर लिया, ये करने के बाद फिर दोबारा वैसा विश्वास नहीं बनेगा। इसका ये अर्थ लेना चाहिये। लेकिन ये अर्थ न लें कि फिर कभी विश्वास होगा ही नहीं।

सबसे भूलें होती हैं, मनुष्य अज्ञानी होता है, असामर्थ्य वाला होता है, अनुभव कम होता है। शीघ्रता, लापरवाही या प्रमाद वश वह गलत काम कर बैठता है, विश्वास भंग कर देता है, व्रता को तोड़ देता है, असत्य का व्यवहार कर देता है। अगर ऐसा व्यक्ति अपने व्यवहार के लिये क्षमा याचना करे, प्रायश्चित करे, दंड ले ,आगे कभी भी वैसा न करे, तो फिर विश्वास बनता है। ऐसी बात नहीं कि नहीं बनता है। खूब बन जाता है।

हम घरों में भी देखते हैं, संस्थाओं में देखते हैं। पत्नी भूल कर देती है, पति भूल कर देते हैं, बाप–बेटे, भाई–भाई भूल कर देते हैं, वे फिर मिल जाते हैं। पुनः एक दूसरे के प्रति विश्वास बन जाता है। लेकिन जिसकी विश्वास भंग करने की प्रवृत्ति होती है, आज विश्वास भंग कर दिया, कल भी कर दिया, परसों भी कर दिया, आगे भी कर दिया, तो ऐसी स्थिति के अंदर उसके प्रति विश्वास नहीं बन पायेगा। ***स्वार्थी व्यक्ति, अज्ञानी व्यक्ति विश्वास भंग करता ही रहता है।*** एक व्यक्ति के साथ, दूसरे व्यक्ति के साथ, तीसरे के साथ, सब के साथ जहाँ उसे मौका मिला, विश्वास भंग कर दिया, वचन तोड़ दिया, प्रतिज्ञा भंग कर दी।

धर्म के ऊपर चलना, वचन के ऊपर चलना, प्रतिज्ञाओं पर चलना, आदर्शों पर चलना और कर्त्तव्यों का पालन करना, ये सब बहुत कठिन है। नियमों का पालन वही व्यक्ति कर सकता है, जो तपस्वी होता है, त्यागी होता है, सहनशील होता है, गंभीर होता है। इन गुणों को धारण किये बिना व्यक्ति बहुत कठोर व्रतों को तो छोड़ दीजिये, संकल्पों को छोड़ दीजिये, सामान्य नियमों का पालन भी नहीं कर पाता है।

आलसी, प्रमादी, अवसरवादी, भोगी व्यक्ति तो जो सामान्य नियम हैं, नियमित कर्म हैं, उनका पालन भी नहीं करेगा। जैसे ऊपर छत से कपड़े लाने हैं, कपड़े नहीं लायेगा वह, समय पर कपड़े धोने हैं, नहीं धोयेगा वह, सुबह झाडू लगाना है, मगर झाडू नहीं लगायेगा वह। ऐसे ही वस्त्रों को और पुस्तकों को व्यवस्थित नहीं रखेगा, वस्त्रों को और पात्रों को शुद्ध नहीं रखेगा वह। यह वचन भंग है, प्रतिज्ञा भंग है। स्वार्थी व्यक्ति अपने में ही लगा रहता है, बस।

ईश्वर कितना काम करता है। ईश्वर सोता नहीं है कभी, न सोया, न कभी सोयेगा। कमर के बल टेढ़े होकर नहीं बैठता ईश्वर, न पीछे दीवार के सहारे सिर लगाकर के बैठता है। ईश्वर में कितना पुरूषार्थ है। ईश्वर के इस

पुरुषार्थ को देखते हैं तो बहुत बल मिलता है। ईश्वर से सीखना क्या है? यही तो सीखना है। ईश्वर के बल को देखो, ईश्वर के न्याय को देखो, ईश्वर के पुरूषार्थ को देखो, धैर्य को देखो, सहनशक्ति को देखो। इन गुणों को देखते हैं तो बड़ा विस्मय होता है, बड़ा आश्चर्य होता है। इसके विषय में चर्चा करते हैं, विचार करते हैं, चिंतन करते हैं, तो मन में विचार आता है कि मैं भी ऐसा बनूँ। फिर जब व्यक्ति ईश्वर से प्रार्थना करता है तो वैसा बन जाता है।

भूमिका–विश्वास खो दिया तो दूसरों से कुछ नहीं मिलेगा :–

(105) विश्वास खोया, तो सब कुछ खोया।

विश्वास भंग करने वाला अज्ञानी व्यक्ति यह विचार नहीं करता कि विश्वास भंग करके मैं अपना बहुत बड़ा नुकसान कर रहा हूँ। कोई आदमी करोड़ों रुपयों का लाभ कमाने के लिए विश्वास भंग कर रहा है। यह बुरा तो है ही। कुछ व्यक्ति लाख रुपये के लिए विश्वास भंग कर देते हैं, कोई हजार रुपये के लिए विश्वास भंग कर देते हैं। आश्चर्य उन पर होता है कि जो दो–दो रुपये की चाय के लिए, थोड़े से पैसे के लिए विश्वास भंग कर देते हैं, उनको क्या कहा जा सकता है ?

विश्वास लाखों रुपये में भी नहीं मिलता है। ***किसी दूसरे व्यक्ति के मन में अपने प्रति विश्वास, श्रद्धा, प्रेम, निष्ठा और रुचि उत्पन्न कर देना, ये बहुत बड़ी चीज है। करोड़ रुपये नहीं, अरब रुपये देकर के दूसरे व्यक्ति के मन में इन रुपयों के माध्यम स विश्वास नहीं पैदा कर सकते। विश्वास हमेशा सत्य के माध्यम से पैदा होता है।*** ये ध्यान देने की चीज है। किसी को लाख रुपये, दस लाख रुपये या करोड़ रुपये देकर उसके माध्यम से यह विश्वास नहीं करा सकते कि–मैं अच्छा आदमी हूँ, मैं विश्वासपात्र हूँ। विश्वास हमेशा सत्य के आचरण के ऊपर, व्यवहार के ऊपर, चिंतन के ऊपर, लक्ष्य के ऊपर, जीवन चरित्र और दिनचर्या के ऊपर आधारित होता है।

लम्बे काल तक आदर्श रूप में तपस्यापूर्वक, सहनशक्तिपूर्वक, धैर्यपूर्वक आदर्शों पर चलता रहे तब कहीं जाकर व्यक्ति का विश्वास बनता है, अन्यथा नहीं बनता है। विश्वास को बनाने के लिए बहुत लम्बे काल तक, निरन्तर, श्रद्धा, तपस्यापूर्वक लगे रहना पड़ता है।

भूमिका–विश्वास करो मगर आंख मूंदकर नहीं। आचार्यवर सावधान कर रहे हैं:–

(106) बिना परखे, विश्वास मत कर।

प्रायः देखने में आता है कि किसी व्यक्ति के दो, चार, पाँच, दस गुणों को देखकर जल्दी से उसको देवता मान लेते हैं। सोचते हैं कि वो बहुत बढ़िया आदमी है। अरे भाई, तेरे को अभी दो ही दिन हुये हैं उसके साथ रहते हुए । तूने दो चार तो प्रवचन सुने हैं। इतनी जल्दी से यह बहुत बढ़िया आदमी कैसे हो गया। दस वर्ष तक इसके साथ में रहेंगे, तब पता चलेगी इसकी कमी। ***किसी व्यक्ति को विश्वसनीय मानने के लिए, बताने के लिए, जानने के लिये, विश्वास पैदा करने के लिये, लंबे काल तक उसकी दिनचर्या को, खान पान को, चरित्र को, व्यवहार को, उद्देश्यों को, उसके सारे क्रिया–कलापों को देखना पड़ता है,*** तब कहीं जाकर उसके प्रति मन में इस प्रकार की भावना उत्पन्न होती है। हाँ, किसी के विषय में खूब सुना है, पढ़ा है, जाना है, अगर लोग प्रशंसा कर रहे हैं तो फिर इस व्यक्ति के विषय में थोड़े काल में परीक्षण किया जा सकता है लेकिन एक व्यक्ति जो बिल्कुल हमारा अपरिचित है, अकस्मात् आ गया, लाख रुपये भी क्यों न दे, उसका विश्वास नहीं होता है। ***जो केवल धन को देखकर के विश्वास कर लेते हैं, वे बुद्धिमान नहीं हैं।*** दूसरे में अपने प्रति प्रेम, श्रद्धा, भावना, लगाव, लक्ष्य आदि इन सारी बातों को देखकर व्यक्ति के मन में उसके प्रति श्रद्धा, प्रेम, विश्वास उत्पन्न होता है।

भूमिका–विश्वास का बल, मंजिल पर पहुँचा देता है अतः–

(107) विश्वास बनाना सौभाग्य का जनक है।

दूसरे के मन में अपने प्रति विश्वास बनाना एक बहुत बड़ी संपत्ति का संचय करना है। ***विश्वास होने पर व्यक्ति दस हजार नहीं, लाख नहीं, दस लाख नहीं, पचास लाख रुपये भी सहजता से दे देता है।*** अगर विश्वास न हो तो इन सब की बात तो दूर पाँच रुपये भी नहीं देता। महात्मा गाँधी के पास एक छोटी सी लंगोटी थी। उनके ऊपर विश्वास था, इसलिए जनता ने उन्हें करोड़ों रुपयों का दान दिया। आचार्य विनोबा भावे ने विश्वास के आधार पर जमीनदारों से लाखों एकड़ जमीन ली और लाखों एकड़ जमीन उन्होंने बाँटी। नेताजी सुभाषचंद्र बोस को देखिये, एक सेना खड़ी कर दी,

करोड़ों रुपये लोगों ने दिये। आज भी जो सामाजिक कार्य करते हैं, उन व्यक्तियों को लोग पैसे देते हैं। वे विश्वास करते हैं कि – ये अच्छा काम करेंगे, सामाजिक परोपकार के कल्याणकारी कार्यों में मेरा पैसा लगायेंगे। जिसके प्रति विश्वास नहीं होता है, उसको एक कौड़ी भी नहीं मिलती। भिखारियों के विषय में विश्वास रहा नहीं। क्यों नहीं रहा? अनेक भिखारी शराब पीते हुए, जुआ खेलते हुए, उल्टे–सीधे काम करते हुए दिखाई देते हैं। इसलिए बहुत कम लोग उन्हें भिक्षा देते हैं।

इसी प्रकार विद्वानों के विषय में, संन्यासियों के विषय में, कार्यकर्त्ताओं के विषय में नियम है। विश्वास न होने के कारण पैसा नहीं मिलता है। जहाँ विश्वास है, वहाँ पर धन मिलता है। उसके पीछे कारण है– तपस्या, त्याग, सत्य, आदर्श, निष्कामता, ईश्वर भक्ति आदि। इसे व्यक्ति की एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक संपत्ति कहेंगे। ***व्यक्ति लखपति बन जाये, करोड़पति बन जाये, अरबपति बन जाये, वह सौभाग्यशाली नहीं है, मगर वह विश्वासपात्र बन जाये, हर किसी के मन में उसके प्रति विश्वास की भावना बन जाये, वो बड़ा सौभाग्यशाली है।*** इसलिए विश्वास को उत्पन्न करना चाहिए, परिवार में भी और संस्थाओं में भी। विश्वास भंग करने वाले व्यक्ति का तो जीवन में कोई चरित्र नहीं बनता है। उसकी उन्नति नहीं होती है। विश्वासघात करने वाला व्यक्ति जीवन पर्यन्त पश्चाताप की अग्नि में जलता रहता है। उसको कभी शांति नहीं मिलती है, उसको कभी चैन नहीं मिलता।

भूमिका–आचार्यवर राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का निर्देश कर रहे हैं:–

(108) सरकार को सहयोग करें।

समाज, राष्ट्र से हम प्रत्येक दिन सैकड़ों नहीं, हजारों रुपयों का सहयोग प्राप्त करते हैं। उनके प्रति क्या व्यक्ति का कोई कर्त्तव्य नहीं है ? ये राष्ट्रीय दोष से सम्बन्धित बातें हैं। जितनी सुविधाएँ व्यक्ति प्राप्त करते हैं, वे व्यक्ति को क्यों नहीं दिखाई देती हैं। बिजली, पानी, सड़कें, पुलिस, न्यायाधीश, चिकित्सालय, पुल, बाँध आदि चीजें प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का निर्वहन करने के लिए आवश्यक हैं। इन चीजों के रूप में ***व्यक्ति राष्ट्र की ओर से, समाज की ओर से, सैकड़ों, हजारों रुपये की सुविधा प्रत्येक दिन प्राप्त करता है। वही व्यक्ति प्रतिफल के रूप में एक रुपया भी नहीं देता है।*** ये बहुत बड़ी समस्या राष्ट्र के प्रति उत्पन्न कर दी है।

विदेशों में मैंने देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह मजदूर हो, लोहार हो, मिट्टी ढोने वाला हो, पत्थर तोड़ने वाला हो, कोई भी काम करने वाला हो, यदि वह एक दिन में सौ पौंड का काम करेगा तो तीस पौंड सरकार वहीं टैक्स के रूप में काटती है। तब जाकर वहाँ राष्ट्र की उन्नति हुई है।

विदेशों में कितनी सुविधायें हैं। कमाल करके रखा ह उन्होंने। हम तो नरक में पड़े हैं यहाँ पर। क्या हमारी सड़के हैं, क्या हमारी व्यवस्था है, क्या हमारे स्कूल हैं, क्या हमारी बसें हैं, उनके जैसा कुछ भी नहीं है कुछ भी नहीं है यहाँ, क्योंकि करोड़ों व्यक्ति लाखों रुपये प्रत्येक वर्ष सरकार से कमाते हैं, लेकिन सरकार को देने के लिए फूटी कौड़ी नहीं है उनके पास। इससे बड़े राष्ट्रद्रोही और कौन हो सकते हैं ? ये राष्ट्रीय समस्याएँ हैं। ये स्थिति अभिनिवेश के कारण उत्पन्न होती है। मैं दूँगा तो मैं लुट जाऊँगा, मर जाऊँगा, व्यक्ति ऐसा सोचता है।

कई युद्ध पाकिस्तान, चीन के साथ हुये। सैंकड़ो हजारों व्यक्ति युद्ध स्थल पर मारे गये। करोड़ों नहीं, अरबों रुपयों का देश को नुकसान हुआ। इतना कार्य लोगों ने किया। हजारों व्यक्ति वहाँ पर युद्ध में अपने प्राणों की बाजी लगाकर के युद्ध करने गये। पन्द्रह–सोलह हजार फीट की ऊँचाई पर जहाँ व्यक्ति थर–थर काँपता है, वहाँ पर आम आदमी रह नहीं सकता। हमारे सैनिक वहाँ जाकर के हमारे लिये लड़ते हैं। अगर व्यक्ति उन सैनिकों के नाम पर एक रुपया भी नहीं देता, तो उससे बड़ा राष्ट्रद्रोही कौन होगा ?

प्रधानमंत्री राहत कोष सबके लिये खुला है। करोड़ रुपये नहीं, लाख रुपये नहीं, हजार रुपये भी नहीं, सौ रुपये भी दें तो रसीद मिलेगी आपको। धन्यवाद करेंगे आपको कि प्रधानमंत्री राहत कोष में या अन्य प्रकार के सहायता कोष में आपने सौ रुपये दिये। गुजरात में भूकंप आया। यद्यपि मैंने देखा, सारे देश से हजारों ट्रक भर–भर के दैनिक सामग्री देने के लिए यहाँ पर आए। देश के अंदर बहुत सारे व्यक्तियों ने यहाँ आकर सहायता की। जिन्होंने दिया उनकी बात ठीक है, लेकिन फिर भी देश के अंदर हजारों नहीं, लाखों नहीं, करोड़ों व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जिन्होंने इस भूकंप राहत कार्य करने के लिये एक कौड़ी भी नहीं दी। हमारे अंदर ये बहुत बड़ा सामाजिक राष्ट्रीय दोष है। ये घटनाएँ दर्शाती हैं कि व्यक्तियों की अत्यन्त संकुचित वृत्ति हो गई है। अज्ञान के कारण उपजी यह संकुचित वृत्ति समस्यायें पैदा करती है।

..दूसरों की मदद करोगे तो कल कोई दूसरा
.. क्योंकि दयालुता, दयालुता को जन्म देती है।
..हैं:–

(109) दुर्घटनाग्रस्त अजनबी की मदद करो।

..ल्ली की घटना है। एक्सीडेंट से एक व्यक्ति की टाँग टूट गई थी। व्यक्ति के साइड से सारे वाहन निकल रहे थे। कोई भी नहीं रुक रहा था। मोटर साइकिल निकल रही थी, स्कूटर निकल रहा था, कार निकल रही थी, बस निकल रही थी, रिक्शा निकल रहा था, मगर वे वह रुकते ही नहीं थे। इसी प्रकार तड़पते हुये देखकर जो रुकते हैं, उनको उठाते हैं, ये एक अलग बात है। उनका धन्यवाद है। लेकिन आजकल सबकी प्रवृत्तियाँ ऐसी नहीं हैं। कितनी स्वार्थ वाली बातें हो गई हैं। इसी प्रकार पचास वर्ष पहले देखते थे कि नगर–नगर, गाँव–गाँव, गली–गली के अंदर लोग रास्ते में प्याऊ घर रखते थे। आज देखिये क्या स्थिति है, पानी बेचते हैं– एक रुपये का गिलास, पचास पैसे का गिलास, दस रुपये की एक बोतल। ये समस्याएँ, राष्ट्रीय समस्याएँ हैं।

::॥ समाप्त ॥::